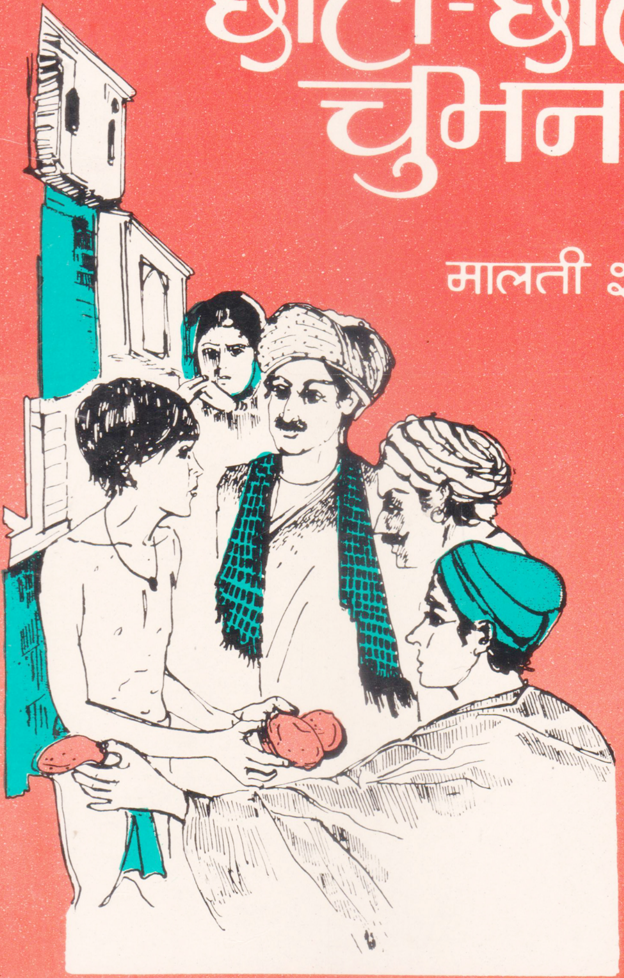
छोटी-छोटी चुभन

मालती शंकर



प्रकाशन विभाग

छोटी छोटी चुभन

बाल कहानी संग्रह

मालती शंकर

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

प्रथम संस्करण : श्रावण 1905 (अगस्त 1983)
द्वितीय संस्करण : पौष 1911 (जनवरी 1990)

मूल्य : 15 रुपये

निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित।

विक्रय केन्द्र ● प्रकाशन विभाग

- सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली-110001
- कामर्स हाउस, करीमभाई रोड, बालार्ड पायर, बम्बई-400 038
- 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता-700 069
- एल.एल.ए. आडीटोरियम, 736 अन्नासलै, मद्रास-600 002
- बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800 004
- निकट गवर्नमेंट प्रेस, प्रेस रोड, त्रिवेन्द्रम-695 001
- 10 बी, स्टेशन रोड, लखनऊ-226 019
- राज्य पुरातत्वीय संग्रहालय बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन्स, हैदराबाद-500 004

भारत मुद्रणालय, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032 द्वारा मुद्रित

दो शब्द

बच्चे स्वभाव से ही कहानी प्रिय होते हैं। उन्हें सभी कथाएं प्यारी लगती हैं, चाहे वे परी की हों या राजकुमारी की अथवा आम जिन्दगी की किसी भी घटना से संबंधित हों। यही कारण है कि दादी और नानी से कहानी सुनने की प्रथा हमारे देश में ही नहीं विश्व के सभी देशों के बालकों में रही है। वे हमेशा उनसे नई-नई कहानी सुनने की जिद करते हैं। उन्हें इच्छा होती है कि वह कोई न कोई नई चीज, नया किस्सा और नया अफसाना कहानी के माध्यम से सुन सकें।

ये कहानियां जहां मनोरंजक होती हैं, वहां यह एक सशक्त माध्यम भी है, बालकों को शिक्षित बनाने और उन्हें अच्छे आदर्शों की ओर अभिमुख करने का। यही कारण है कि आधुनिक युग में अच्छे साहित्यकारों ने बाल-साहित्य की दिशा में अपनी लेखनी उठाई और एक-एक शब्द ढूंढकर ऐसे कथ्य अत्यन्त कौशल के साथ तैयार किए, जो बच्चों को सहज ही आकर्षक करने में सफल हुए। इन कहानियों की विशेषता यह है कि जहां इनमें मनोरंजन का तत्व होता है, वहां इनसे बच्चों को कोई-न-कोई शिक्षा भी मिलती है; उनकी जिज्ञासा शांत होती है और उन्हें नई-नई चीजें जानने को मिलती हैं।

यही कारण है कि प्रकाशन विभाग ने अपने बाल-पाठकों के लिए एक-से-एक उपादेय पुस्तकें समय-समय पर प्रकाशित की हैं और यह संतोष और हर्ष का विषय है कि ये पुस्तकें काफी लोकप्रिय सिद्ध हुई हैं और उनके कितने ही संस्करण निकले हैं और निकल रहे हैं। सुप्रसिद्ध कहानीकार और बाल मन की कुशल चितेरी लोकप्रिय लेखिका श्रीमती मालती शंकर द्वारा रचित प्रस्तुत यह कथा-संग्रह भी इसी दिशा में अपने बाल-पाठकों के लिए हमारी नई भेंट है।

—सम्पादक

अनुक्रम

मन का शीशा

एक था राजकुमार अरुण। गोरा-चिट्टा रंग, उगते सूरज से लाल-लाल गाल। घर की दासियां रोज उसे चंद्रकिरण परी की कहानी सुनाकर सुलातीं। जरा बड़ा हुआ तो पढ़ाई-लिखाई में भी तेज निकला। एक तो राजा का बेटा, ऊपर से इकलौता। यूं तो सर्वगुण सम्पन्न था, पर था जिद्दी। जो बात दिमाग में आ जाती, बस वह पूरी होनी ही चाहिए।

युवा हुआ तो विवाह के लिए कई देश की राजकुमारियों के पैगाम आने लगे। राजकुमार एक एक को देखता, पर उसे कोई न भाती। राजा-रानी को चिन्ता हुई। उन्होंने राजकुमार को बहुत समझाया, पर सब बेकार। वह तो चन्द्रकिरण परी जैसी पत्नी चाहता था।

राजा-रानी समझा-समझाकर हार गए, तो उन्होंने मंदिर में मनौतियां मांगनी शुरू कीं।

एक रात राजकुमार मां से बोला—"मां, मैं आज शाम मंदिर गया था। वहां पुजारी की लड़की देखी। मुझे पसन्द है।"

रानी ने बात राजा से छेड़ी। राजा बोला—"लड़की पसंद है, तो विवाह जल्दी कर दो। उस जिद्दी का क्या ठिकाना, बात बदल न दे।"

सुबह होते ही पुजारी को बुलाया गया। वह राजा की बात सुनकर सकते में आ गया। हाथ जोड़कर बोला—"महाराज, मैं साधारण आदमी हूं। मेरी बेटी में राजकुमारियों जैसा रूप-गुण कहां से आया। राजकुमार के साथ उसकी कोई जोड़ी नहीं।"

राजा बोला—"जब राजकुमार को पसन्द है, तो हमें भी पसन्द है। जाओ, विवाह की तैयारी करो। खर्च के लिए जितना धन चाहिए, खजाने से ले लो।"

राजाज्ञा का उल्लंघन करने की शक्ति पुजारी में नहीं थी। विवाह बड़ी धूम-धाम से हो गया। बहू बन कर सरस्वती, महल के प्रवेश द्वार पर आई। शहनाइयां बज उठीं। रानी मां ने उसे अपनी बांहों में भर लिया। "रानी की बहू बहुत सुन्दर है"—चारों ओर शोर मच गया। पर कुमार का मुंह उतर गया। दिन के उजाले में सरस्वती उसके मन को नहीं भाई।

महल में खुशियां मनाई जाती रहीं, पर कुमार सरस्वती से दूर ही दूर रहता। सरस्वती मन ही मन रोती, पर क्या करती।

कुछ दिन बाद सरस्वती का भाई उसे विदा कराने आया। सरस्वती जाने लगी, तो कुमार ने कह दिया—"सरस्वती, तुम मेरी कल्पना की चंद्रकिरण परी की छाया भी नहीं लगतीं।"

राजवैद्य ने बाहर आकर पर्ची खोलकर पढ़ी। लिखा था—'अच्छा होते ही मैं पहले सरस्वती को लेने जाऊंगा।'

आधी रात को वैद्य जी कमरे में फिर आए। उनके हाथ में वैसा ही शीशा था, जैसा कमरे की दीवार पर टंगा था। उन्होंने देखा, कुमार गहरी नींद सो रहा है। उन्होंने ठक से आवाज की। कुमार फिर भी बेसुध सोता रहा। वैद्य जी ने धीरे से कमरे में टंगा, अच्छी सूरत को भी टेढ़ा-मेढ़ा दिखाने वाला शीशा उतारा। उसके स्थान पर नया शीशा टांग दिया। फिर चुपचाप पुराना शीशा लेकर बाहर निकल गए।

दूसरे दिन राजकुमार उठा, तो सूरज चढ़ चुका था। वह उठकर शीशे के सामने गया। अरे, जादू हो गया। राजकुमार तो पहले जैसा रूपवान लग रहा था। उसका चेहरा एकदम ठीक हो गया था। किवाड़ खोलकर वह बाहर निकल आया।

उसके चारों ओर भीड़ लग गई। सब कहने लगे—"राजकुमार अच्छे हो गए। अब महल जा सकते हैं।" राजकुमार बोला— "नहीं, मैं पहले पुजारी जी के घर जाऊंगा।" कहते-कहते उसकी आंखों से पश्चाताप के आंसू टपक पड़े।

मंत्र का प्रभाव

एक गांव में हरखू नाम का एक लड़का रहता था। मां बाप बचपन में ही मर गए थे। पढ़ाई-लिखाई छूट गई। दूसरों के खेत पर मजदूरी करके किसी तरह पेट पालता था। वह मेहनती बहुत था। इसलिए गांव में और किसी को काम मिले न मिले हरखू को मजदूरी की कमी नहीं रहती थी। हरखू दिल का भी अच्छा था। दूसरों की मदद को भी हरदम तैयार रहता था। उसके मित्रों की अच्छी खासी टोली बन गई थी।

एक बार देश में भयंकर प्लेग फैली। हरखू के गांव में भी चूहे मरने शुरू हुए। देखते-देखते चूहों से फैली इस बीमारी ने गांव के लोगों पर भी धावा बोल दिया। बहुत लोगों की मृत्यु हो गई। अब लोगों ने गांव से भागना शुरू किया। भागने वालों की संख्या रोज बढ़ती ही चली गई। गांव वाले तो यहां तक डर गए कि कुछ तो घरों में मरीजों को अकेला छोड़कर चले गए। इन लोगों को सहारा था तो बस हरखू की टोली का। ये लोग वैद्य जी से दवा लाकर मरीज़ों को देते और रात दिन उनकी सेवा करते। रोज़ लोगों को दर्द से तड़पता और मरता देख हरखू के मित्रों के भी पांव उखड़े। वे भी चुपचाप दूसरे गांव चले गए। हरखू अकेला पड़ गया। उसने हिम्मत नहीं हारी।

प्लेग जब समाप्त हो गई तो गांव वाले अपने घरों को लौटे। लोग अब हरखू को भी मानने लगे थे। वैद्य जी ने तो उसे अपना बेटा ही मान लिया था। उसे अपना हुनर सिखाने लगे थे। अंत में मरने से पहले, वैद्य जी ने अपनी दुकान भी हरखू को ही सौंप दी।

एक दिन हरखू किसी मरीज को देखकर लौट रहा था। जेठ की भरी दोपहरी थी। लू बहुत तेज चल रही थी। हरखू ने देखा, सड़क पर एक साधु बाबा बेहोश पड़े हैं। हरखू उन्हें उठा लाया। उपचार किया। साधु ठीक हो गए।

शाम को साधु ने मधुर आवाज में भजन और कीर्तन गाना शुरू किया जिसे सुन कर अनेक लोग एकत्रित हो गए। कीर्तन ने जोर पकड़ा तो पूरा गांव उमड़ा चला आया। कीर्तन खत्म करने पर साधु ने कहा, "आज तुम्हारे हरखू वैद्य ने मेरी जान बचाई है। मैं इन्हें पैसे तो नहीं दे सकता। हां, आशीर्वाद के रूप में इन्हें एक मंत्र जरूर दूंगा। उस मन्त्र को जप कर, यह जब भी किसी को दवा देंगे, मरीज जरूर अच्छा होगा।"

साधु थोड़ी देर चुप रहा। फिर उसने हरखू के कान में कुछ कहा। उस के बाद साधु बोला, "बस एक बात याद रखना। अपनी उचित फीस और दवा के



इस मंत्र के प्रभाव से हर मरीज अच्छा होगा।"

दाम ही लेना। अगर कभी भी लालच या आलस में आकर किसी का इलाज करने से तुमने मना किया, तो इस मंत्र का प्रभाव खत्म हो जाएगा।"

दूसरे दिन साधु चला गया। पर उसका यह आशीर्वाद सुगंध की तरह चारों ओर फैल गया। हरखू की दवा में जादू का असर आ गया। पुराने से पुराने रोगी अच्छे होने लगे। बात पहले आस पास के गांवों में फैली। फिर दूर-दूर शहर से मरीज़ आने लगे। अब तो हरखू जल्दी ही हरप्रसाद वैद्य बन गए—उनकी छोटी-सी दुकान एक औषधालय में बदल गई। दवाएं कूटने पीसने को चार-छै नौकर भी आ गए। काफी धन भी जमा हो गया।

धन बढ़ा तो हरखू की नीयत भी बदल गई। उसने सोचा, 'जब मरीज अच्छे हो ही जाते हैं तो जड़ी-बूटियों में अधिक धन क्यों लगाऊं।' अब अक्सर वह राख की पुड़िया ही मरीजों को देने लगा। गरीब लोगों के घर देखने जाना छोड़ दिया। औषधालय में गरीबों को घण्टों बिठाए रखता।

एक दिन पास के शहर से सेठ काशीलाल अपनी बेटी को लेकर आए, लड़की कई दिनों से बेहोश थी। कोई दवा असर नहीं कर रही थी।

हरखू ने लड़की को देखा तो देखता रह गया। लड़की बहुत सुन्दर थी। हरखू ने कहा "बेहोशी तो दूर किए दे रहा हूं पर मेरी फीस—"

"जो कहिएगा दे दूंगा", सेठ जी ने बीच में ही टोकते हुए कहा—"बस मेरी बेटी को ठीक कर दें।"

"अपना वचन याद रखिएगा।" यह कह कर हरखू दवा लेने अन्दर चला गया। दवा पीकर लड़की ने आंखें खोल दीं। सेठ काशीलाल ने रुपये भरी थैली वैद्य जी के आगे खोल दी और बोला, "मुझे अपना वचन याद है वैद्य जी।"

"वचन याद है तो अपनी बेटी का विवाह मुझ से कर दीजिए।" थैली परे हटाते हुए हरखू ने कहा।

काशीलाल तो जैसे आसमान से गिर पड़े वह बोला—"यह कैसे हो सकता है! वैद्यजी! उसकी सगाई तो——"

"आप किसी बड़े आदमी से करेंगे। यही न।" हरखू ने बात काटते हुए कहा। धन की कमी यहां भी नहीं होगी। क्योंकि मुझे ऐसी विद्या आती है कि हर मरीज को ठीक कर सकता हूं।

काशीलाल मन में सोच रहे थे, सुख सिर्फ धन से तो नहीं आता। पर वे जानते थे, हरखू तो इस समय धन के गुमान में है। विवाह में पात्रता का अर्थ वह क्या समझेगा।

सेठजी को चुप देख हरखू बोला—"सेठ जी, लगता है आप अपने वचन से हट रहे हैं। इतने गांव वालों के सामने दिया वचन मैं आपको तोड़ने नहीं दूंगा।"

सोने का टुकड़ा

एक था राजकुमार। उसका नाम था कर्मवीर। नाम कर्मवीर तो अवश्य था, पर वह कोई अच्छा काम नहीं करता था। पिता की मृत्यु के बाद कर्मवीर गद्दी पर बैठा। राजकाज का काम मन्त्रियों को सौंप, वह महल की रंग-रलियों में डूब गया। मन्त्री भी प्रजा की भलाई का काम छोड़ अपनी अपनी झोली भरने लग गए। इस प्रकार राजकोष भी खाली होने लगा। सारी जनता परेशान हो गई। राज्य की ऐसी अवस्था पड़ोसी राजा से छिपी न रह सकी। उसने कर्मवीर के राज्य पर हमला बोल दिया। यह देख, आस-पड़ौस के दो छोटे राजा भी कर्मवीर के राज्य की सीमा में घुसकर लूटपाट मचाने लगे।

इस तरह राज्य पर हमला होगा, यह राजा ने सोचा भी न था। राज्य में सैनिक कम न थे, मगर थे सब आलसी। उस पर उनके हथियार भी पुराने थे। मुकाबला कैसे होता। शत्रु सेना आगे बढ़ने लगी।

एक दिन इसी चिंता में डूबा हुआ राजा शहर से दूर जा पहुंचा। घोड़ों को एक पेड़ से बांध दिया। वह सोच रहा था—'इस संकट से कैसे मुक्ति मिलेगी ऐसा बुद्धिमान कौन है मेरे राज्य में जो इस समय मेरी सहायता करेगा।'

तभी किसी की पदचाप सुनकर वह चौंक उठा। देखा, काला लबादा ओढ़े कोई पास खड़ा हुआ था। यूं अचानक किसी को पास खड़ा देख, राजा ने म्यान से तलवार निकाल ली। उसे भय था, कहीं यह शत्रु का कोई जासूस न हो।

राजा ने पूछा——"कौन हो? क्या चाहते हो?"

"मैं तुम्हारी चिंता का हल लेकर आया हूं। मैं कौन हूं, यह जान कर क्या करोगे।" लबादा ओढ़े व्यक्ति ने कहा।

"ठीक है, परिचय नहीं पूछता। अच्छा बताओ, मेरी समस्या का क्या हल है?" राजा ने पूछा।

"चिन्ता न करो। प्रजा के पास जाओ। वही तुम्हारी सहायता करेगी। उसका त्याग नहीं देखा। तुम्हारे अत्याचारों को सहती हुई भी प्रजा चुप थी। वह तुम्हें आज भी प्यार करती है।" राजा सुनता रहा। उस व्यक्ति की बातें राजा को असरदार लगीं। कुछ कहा नहीं, चुपचाप लौटने लगा। व्यक्ति ने लौटते हुए राजा से कहा.............

—"मैंने जो कहा है, करना। मैं फिर मिलूंगा।"

'भला, प्रजा मेरी क्या सहायता करेगी।' राजा ने सोचा। पर उस व्यक्ति



"जाओ, अपनी प्रजा से सहायता मांगो ।"

की बात मानने के अलावा और कोई रास्ता था भी नहीं। राजा ने प्रजा से सहायता की प्रार्थना की। दरबारी जनता के पास गए। लोगों के पास थोड़ा बहुत जो भी धन था, उन्होंने देश की रक्षा के लिए दे दिया।

प्रजा के त्याग ने असर दिखाया। काफी धन इकट्ठा हो गया। अब राजा ने भी सतर्कता से काम लिया। अपनी देख-रेख में युद्ध का सामान जुटाया, सैनिकों को युद्ध के लिए तैयार किया। अब शत्रु के साथ घमासान युद्ध हुआ और अंत में जीत कर्मवीर की ही हुई।

इस विजय से राज्य भर में खुशी की लहर दौड़ गई। दरबार में जीत की खुशी में उत्सव मनाने की तैयारी होने लगी। राजा ने सोचा—'मुझ जैसे महान राजा को इस अवसर पर सोने के सिंहासन पर बैठना चाहिए।'

राजा की आज्ञा से राज्य भर के सुनार सिंहासन बनाने में जुट गए।

उत्सव का दिन आया। राजा सज-धजकर आया। सोने के दमकते हुए सिंहासन को देखकर स्वयं चकित रह गया। वह सिंहासन की ओर बढ़ा। अचानक सिंहासन हिला और एक तरफ झुक गया। राजा ठहर गया। उसने देखा, सिंहासन की चार टांगों से एक टांग छोटी थी।

यह देख, राजा के क्रोध का ठिकाना न रहा। उसने सुनारों से पूछा। वे कहने लगे, "महाराज, हमने तो चारों टांगें बराबर ही बनाई थीं। पता नहीं, यह करिश्मा कैसे हुआ?"

वर्षा हुई । नदियों में बाढ़ आ गई । बाढ़ की चपेट में लछमन का गांव भी आ गया । लहलहाती फसल नष्ट हो गई । एक रात अचानक बाढ़ का पानी गांव में घुस आया । गांव वाले गांव छोड़कर भागने लगे । तबाही मच गई । ऐसे में लछमन को महेश की याद आई ।



"तुम लोग ठहरो मैं मित्र से कपड़े मांग कर अभी लाता हूं ।"

लछमन किसी तरह शहर पहुंचा। उसका परिवार भी साथ था। शहर के बाहर एक पाठशाला थी। वहां उसने साफ-सुथरे बच्चों को पढ़ते देखा। तभी लछमन को ध्यान आया। हमारे कपड़े तो मैले-कुचैले हैं। उसने सोचा—'मेरा मित्र अब बड़ा आदमी है। उसके घर इस हालत में जाना अच्छा नहीं।' उसने पत्नी को समझाया—"तुम पाठशाला के पास पेड़ के नीचे रुको। मैं मित्र के पास जाता हूं। उससे नए कपड़े लेकर आता हूं। तभी हम लोग उसके घर चलेंगे।" पत्नी को समझाकर वह चल दिया।

महेश का पता पूछते-पूछते वह उसकी दुकान पर पहुंचा। नाम सुनते ही महेश ने तुरन्त उसे अंदर बुलवा लिया। वह उसकी सूरत देखते ही समझ गया, दाल में कुछ काला है। जरूर मदद मांगने आया है। महेश तो अब लाला महेश चन्द थे। उन्हें फटे हाल लछमन का आना अखरा। इससे पहले कि लछमन कुछ बोले, महेश ने पूछ लिया—"कहो लछमन, अकेले ही आए हो क्या? ठहरे कहां हो?"

लछमन बोला—"अभी-अभी तो आ रहा हूं? ठहरता कहां? तुम्हारी भाभी को शहर के बाहर छोड़ आया हूं।"

महेश ने बात काटी—"अरे, वहां क्यों छोड़ आए? यह गांव थोड़े ही है। यहां अच्छी-अच्छी धर्मशालाएं हैं। आराम से तुम लोग वहां टिक सकते हो।"

लछमन को मित्र की बात तीर-सी चुभी। मन के भावों को दबा कर वह बोला—"महेश भइया, हम तो बर्बाद हो चुके हैं।' फिर उसने भर्राई आवाज में अपनी राम कहानी कह दी।

महेश ने लछमन के प्रति सहानुभूति दिखाते हुए मुनीम को आवाज लगाई। बोला—"मुनीम जी, लछमन हमारा बचपन का मित्र है। एक बार मुसीबत में इसने हमारी मदद की थी। आज इस पर बुरे दिन आ पड़े हैं। जो कुछ इसने हमें दिया था, पूछकर सब लौटा दो।"

फिर महेश ने उठते हुए कहा—"लछमन, मुझे जरूरी काम से बाहर जाना है। तुम्हें कुछ और चाहिए, तो मुनीम जी से ही बात कर लेना।"—यह कहकर महेश चला गया।

मुनीम मालिक का इशारा समझता था। कान पर चश्मा चढ़ाकर हिकरत से बोला—"बताओ, तुमने कितनी मदद की थी हमारे लाला जी की?"

लछमन संकोच से भर उठा—"कुछ नहीं। यूं ही थोड़ी बहुत।"

"ठीक है। मैं तुम्हारे परिवार के खाने-पीने के लिए सात दिन का सामान दिए देता हूं।"

"सात दिन?"—लछमन बात पूरी भी नहीं कर पाया कि मुनीम बोल उठा—"हम भागे तो जा नहीं रहे। और जरूरत पड़े तो फिर मांग ले जाना।" यह कहकर मुनीम काम में लग गया।

लछमन को महेश के बर्ताव पर दुःख हो रहा था। वह सोच रहा था—'क्या मैं अपना दिया वापस मांगने आया था। क्या मित्रता ऐसी होती है? महेश के व्यवहार से दुःखी हो, वह लौटने लगा, तो मुनीम ने खाने का सामान बांधकर उसे दे दिया।

लछमन उसे लेना तो नहीं चाहता था, किन्तु कुछ सोच, गट्ठर उठा लिया। उसे ले, भारी कदमों से लौट पड़ा। गट्ठर लादे आता देख, पत्नी दौड़कर आई। बोली—"इतने कपड़े लाने की क्या जरूरत थी?"

दिन ढले रतनलाल महात्मा जी की कुटिया में पहुंचा। वह संध्या करके उठे थे। देखते ही बोले—"आओ रतनलाल, पहले तुमने अपनी बुद्धि से काफी धन कमाया है। अब भी कमा सकते हो।"

रतनलाल ने कहा—"महात्मा जी, मेरा भाग्य पलट गया है। मैं अब इस शहर में भी नहीं रहना चाहता। मन में आता है, जहर खा लूं या घर छोड़ दूं।"

महात्मा जी ने उसे समझाते हुए कहा—"जाओ, किसी तरह थोड़ा-सा धन जुटाकर परचून की दुकान खोल लो। भगवान ने चाहा, तो मुसीबत के दिन सुख में बदल जाएंगे।"

रतनलाल घर लौट आया। रात भर सो नहीं सका। दूसरे दिन एक रिश्तेदार से कुछ रुपये उधार लिए। परचून की छोटी-सी दुकान खोल ली।

मिर्च-मसाला पत्नी घर से साफ करके भेज देती। दुकान में अच्छी चीजें मिलतीं। खरीदने वाले भी आने लगे। धीरे-धीरे दुकान खूब चलने लगी। साल दो-साल में रतनलाल के पास कुछ जमा-पूंजी भी हो गई। घर में खाने-पीने की कोई कमी न रही। बच्चे फिर स्कूल जाने लगे। कुछ वर्ष बीते। इस बार रतनलाल महात्मा जी से स्वयं मिलने गया। श्रद्धा से चरण छुए। एक ओर बैठ गया।

महात्मा जी ने छूटते ही पूछा—"कहो रतनलाल अब कैसा चल रहा है? दुकान का हाल चाल है? अब तो खाने-पीने की तंगी नहीं?"

रतनलाल ने बुझे मन से कहा—"चलना क्या, आपके आशीर्वाद से किसी तरह गाड़ी घसीट रहा हूं। रूखी-सूखी मिल ही जाती है। ऐसी जिन्दगी को क्या चलना कहते हैं? केवल पेट भरना ही तो जिन्दगी नहीं। पहले सेठ कहलाता था। अब लाला कहलाता हूं। यह सब नसीब का फेर है।"

महात्मा जी मन ही मन विचारने लगे। फिर बोले "तुम दुकान छोड़कर आढ़त का काम क्यों नहीं करते? उसमें काफी मुनाफा होता है।"

रतनलाल के सिर पर धन कमाने का भूत सवार था। उसने दूसरे ही दिन से आढ़त का काम शुरू कर दिया। चमत्कार हुआ। लेन-देन लाखो में फैल गया। कई मुनीम और नौकर-चाकर रखने पड़े। रतन लाल की हर इच्छा पूरी हुई। नगर में उसने एक धर्मशाला बनवाई। सेठ रतन लाल का नाम अब शहर में मशहूर हो गया था।

एक दिन वह गद्दी पर बैठा था। उसने देखा, महात्मा जी चले आ रहे हैं। वह उठ कर भागा। जाकर महात्मा जी के चरण पकड़ लिए। उन्हें आदर भाव से लाकर दुकान में बैठाया। जलपान के लिए फल व मिठाई मंगाई।

महात्मा जी ने कहा—"अब तो सेठ जैसे ठाट-बाट हो गए। खुश हो न? या अब भी कोई कमी खल रही है?"

रतनलाल ने हाथ जोड़कर कहा—"यह सब आपका ही प्रताप है। मगर मैं अभी नगर सेठ तो बना नहीं। नगर सेठ तो हीरे जवाहरात के बड़े व्यापारी



"वरदान ! कैसा वरदान ! मैंने तो बस तुम्हारा विश्वास जगाया था ।"

ही कहला सकते हैं। उसी दिन के इन्तजार में हूं । आप वरदान दें तो वो भी हो जाए।"

महात्मा जी ने पूछा, "तुम्हें हीरे, जवाहरात की परख है ? उस क्षेत्र में बड़ा धोखा हो सकता है।"

"धोखा कैसा ?" रतनलाल ने हाथ जोड़े-जोड़े और कहा, "सभी कुछ तो आपके वरदान का प्रसाद है। नगर सेठ होने का आशीर्वाद दे दीजिए।"

महात्मा जी मुस्कराए. "वरदान कैसा वरदान ? मेरे पास कोई मंत्र नहीं है। मैंने तो सिर्फ तेरा विश्वास जगाया था। यह सब तेरी ही मेहनत का फल है। परन्तु याद रहे, लोभ विश्वास खो देता है सेठ ।"

"ऐसा न कहें महात्मा" कह कर रतनलाल ने अब महात्मा के पैर पकड़ लिए। "एक वरदान और दे दें ।"

महात्मा जी समझ गए । समझाने-बुझाने से रतनलाल की समझ में कुछ नहीं

खुला दरबार

राजा यशोवीर बड़े दयालु और प्रजापालक थे। जब युवराज थे, तभी से उनके मन में प्रजा के लिए अच्छे काम करने की भावना थी। सिंहासन पर बैठते ही उन्होंने घोषणा की—मैं खुला दरबार लगाऊंगा। दरबार में जो भी फरियाद लेकर आए, उसे रोका न जाए। राजा अपने मंत्री और दूसरे अधिकारियों से भी मित्रता का बर्ताव करते थे। किंतु वे लोग प्रजा का शोषण करते थे।

बात यह थी कि राजा यशोवीर के पिता का काफी बूढ़े होने पर स्वर्गवास हुआ था। मरने से एक दिन पहले तक वही राजा थे। बुढ़ापे के कारण उनसे कुछ होता तो था नहीं, बस, मंत्री और दरबारियों के हाथों की कठपुतली थे। परिणाम यह हुआ कि राजतंत्र पर राजा की पकड़ ढीली पड़ गई थी। मंत्री दरबारियों से मिल गया। वे सब प्रजा के साथ मनमानी करने लगे।

नए राजा के सिंहासन पर बैठने के बाद सब चौकन्ने हुए। फिर सबने सलाह की —राजा को दूसरे कामों में उलझाया जाए। समय ही न मिलेगा, तो दरबार कैसे लगेगा? दरबार में किसी फरियादी को आने ही न दिया जाए।

एक बार राजा ने मंत्री से पूछा—"क्या कारण है, दरबार में कोई फरियाद लेकर नहीं आता?"

"क्यों आए महाराज, किसी को कोई शिकायत हो तो आए। मैंने ऐसा प्रबंध किया है कि प्रजा को जरा भी तकलीफ न पहुंचे।"

राजा को शिकार का काफी शौक था। एक बार वह दल-बल के साथ शिकार खेलने गए। मंत्री भी साथ था। कई दिन जंगल में गुजर गए।

एक हिरण का पीछा करते हुए राजा और मंत्री दूर निकल गए। साथी पीछे छूट गए। जंगल घना था, हिरण तो झाड़ियों में जा छिपा, मगर परेशान राजा रास्ता भटक गए। भूख-प्यास भी लग रही थी। भटकते-भटकते दिन बीत गया। फिर शाम भी ढल गई।

अंधेरे में राजा को टिमटिमाती रोशनी दिखाई दी। वे उधर ही चल पड़े। राजा उस समय शिकारी के वस्त्र पहने हुए थे। वस्त्रों पर धूल की पर्तें चढ़ी थीं। इसीलिए पहचानना मुश्किल था। कुछ ही दूर एक गांव था। जाड़े का मौसम। गांव के बाहर कुछ लड़के आग जलाकर ताप रहे थे। राजा और मंत्री के घोड़े देखे, तो वे डरकर भागने लगे। किसी तरह राजा ने उनमें से एक लड़के को रोका। वह बेचारा भय से कांप रहा था। राजा ने पूछा—"बच्चे, यह गांव किस राजा के राज्य में है?"



"मेरा यह साथी गूंगा है। तुम डरो मत बेटे, सब सच-सच कहो।"

"राजा कौन है मैं नही जानता। यह आपका ही गांव है।"—लड़के ने डरते हुए कहा।

"मेरा गांव। क्या तुम्हें मैं कोई राजा लगता हूं?" —राजा ने प्यार से पूछा। लड़का कुछ देर तक घूरता रहा। फिर बोला—"मैंने कहा न, यहां कोई राजा नहीं है। आप ही यहां के राजा हैं। आप जिसे चाहें लूट लें, जिसे चाहें मार दें। मगर मेरे पास कुछ नहीं है।" कहते हुए वह रोने लगा।

राजा ने जब लड़के की बात सुनी तो सोच में पड़ गए। मंत्री ने यह भांप लिया। उसने कुछ कहना चाहा, तो राजा ने उंगुली के इशारे से रोक दिया। लड़के की ओर देखकर कहा—"शायद तुम हमें डाकू समझ रहे हो? हम तो शिकारी हैं। शिकार खेलते हुए रास्ता भटक गए है। क्या इस गांव में कभी डाकू भी आते हैं?"

"कभी क्या, अकसर आते हैं। लोगों को लूट ले जाते हैं। आस-पास डाकुओं का बड़ा जोर है।" —लड़का सहम कर बोला।

"बेटे, इस गांव का नाम क्या है? हम एक रात यहां रुकना चाहते हैं। यहां कोई धर्मशाला है क्या?" राजा ने पूछा।

लड़का तब तक समझ गया था कि ये डाकू नहीं हैं। बोला—"गांव का नाम तो वीरपुरा है। मगर तुम लोगों का हथियार लेकर जाना ठीक नहीं। गांव वाले

छोटी-छोटी चुभन

शम्भू मिट्टी के बर्तन बनाने वाला एक गरीब कुम्हार था। उसके घर सब जी-तोड़ मेहनत करते। शम्भू की पत्नी घर का पूरा काम धंधा करती, फिर दूर से पानी लाकर बर्तन बनाने की मिट्टी गूंधती। शम्भू चाक चलाकर घड़े, सुराही, गमले आदि बर्तन तैयार करता। शम्भू का बेटा गोविन्दी उन बर्तनों पर महीन बेल बूटे खोदता। पक जाने पर उन पर रंगों से चित्रकारी भी करता। गोविन्दी हालांकि दस-बारह वर्षों का ही था, पर बढ़िया चित्रकारी करता। उन बर्तनों के आगे किसी दूसरे कुम्हार के बर्तन न बिक पाते। इतना होने पर भी शम्भू का परिवार न कभी अच्छा खा पाता न पहन पाता। उसके पांच-छः बच्चे थे। नौ खाए तेरह की भूख वाली कहावत उसके घर चरितार्थ होती थी।

अधिक काम पड़ने से शम्भू की पत्नी कमज़ोर हो गई। खाना भी अच्छा न मिलता। आखिर वह बीमार पड़ गई। अब शम्भू को उसका इलाज कराना पड़ा। इलाज में बहुत पैसा खर्च होने लगा। उधर बर्तन कम बन पाते। घर के कामों में गोविन्दी को, बर्तनों पर चित्रकारी करने का समय न मिल पाता। इस लिए बर्तन बिकते भी कम। आखिर घर का खर्च चलाने को उधार लेने की नौबत आ गई। शम्भू ने साहूकार के पास जाकर अपनी व्यथा सुनाई। साहूकार बड़ा धूर्त था। उसने आत्मीयता दिखाते हुए कहा—"तुम्हारी पत्नी बीमार है, तो उसका पूरा इलाज तो होना ही चाहिए। जो ज़ेवर गिरवी रखने के लिए लाए हो, दिखा दो"।

शम्भू गिड़गिड़ाया। "साहजी घर में कोई वस्तु होती तो हम तुम्हारे पास मांगने क्यों आते।"

"तो तुम क्या समझते हो हम तुम्हारे मिट्टी के बर्तनों पर रुपये दे देंगे? ना भाई ना। माफ करो। कल को तुम कह दोगे रुपये तो हम नहीं लौटा पाएंगे।" साहूकार ने मुंह दूसरी ओर घुमा कर पान की पीक थूक दी।

शम्भू साहूकार के पैरों पर गिर पड़ा, "बेटे गोविन्दी की कसम साहजी, मैं आपकी एक एक पाई चुका दूंगा। आप इसी बस्ती के हैं क्या मुझे जानते नहीं? मैं तो मुफ्त में बखशिस भी नहीं लेता। दूसरे का पैसा क्या मारूंगा।"

साहूकार ने नरम होकर कहा, "तुम्हें जानता हूं इसलिए बस एक बात हो सकती है। तुम गोविन्दी को मेरे पास जमानत के तौर पर रख दो। वह थोड़ा बहुत घर का काम कर दिया करेगा। बदले में हम उसे खाना कपड़ा दे देंगे। तुम्हारा खर्च भी कम हो जाएगा। जिस दिन तुम मूलधन लाकर लौटा दोगे गोविन्दी को ले जाना।"

शम्भू रुंआसा होकर बोला "गोविन्दी को आपको दे दूंगा तो बर्तन बनाने में मेरी मदद कौन करेगा। साहजी मेरा सब कुछ चौपट हो जाएगा।"

'फिर तो हम मजबूर हैं, शम्भू। अपना अपना उसूल है, जैसे तुम किसी का पैसा नहीं मारते, हम बिना कुछ गिरवी रखे किसी को पैसा उधार नहीं देते।" साहूकार ने बात साफ कर दी।

मरता क्या न करता ! शम्भू को साहूकार की शर्त माननी पड़ी ।

साहूकार बड़ा कंजूस था। वह बस तिजोरी में धन जोड़ता रहता। उसके बच्चे भी ज़रा-ज़रा सी चीज को तरसते। फिर भला वह गोविन्दी को क्या खिलाता-पहनाता । गोविन्दी को आधे पेट और वह भी रूखी रोटी मिल जाती। ऊपर से कस कर काम लिया जाता। गोविन्दी दिन पर दिन दुबला होने लगा।

शम्भू कड़ी मेहनत करके जो कुछ जुटा पाता हर महीने वह सूद में निकल जाता। वह जब भी सूद देने आता गोविन्दी का उतरा मुंह देख कर पूछता "बेटा यहां पेट भर खाना नहीं मिलता क्या ?"

गोविन्दी बड़ा समझदार था। पिता की चिन्ता बढ़ाना नहीं चाहता था ! छूटते ही कहता—"खाने पीने की यहां क्या कमी होगी, बापू। मुझे मां की चिन्ता सताती है इसी से दुबला हो गया हूं।"

दिन बीतने लगे। गोविन्दी की मां अच्छी हो गई। पर अब गोविन्दी को छुड़ाने की चिन्ता उसे खाए जाती।

इधर साहूकार को गोविन्दी की ईमानदारी पर पूरा भरोसा हो गया था। भंडार घर की चाबियां गोविन्दी के पास ही रहतीं। वह ईमानदार तो था ही, बुद्धिमान भी था। साहूकार के व्यापार का बहुत-सा काम-धंधा भी गोविन्दी ही संभालने लगा। पर इतने काम के बदले में उसे मिलती रूखी-सूखी रोटी और फटा-पुराना कपड़ा। कुछ पड़ोस लोग उसे समझाते—"मूलधन से ज्यादा तो साहूकार सूद में वसूल चुका । अब तू यहां से भाग जा।" पर पिता का वचन तोड़ने वाली बात गोविन्दी को न जंचती। हां ! गोविन्दी अपने इस जीवन से दुखी बहुत था।

अब साहूकार गोविन्दी की ओर से सब प्रकार से निश्चिन्त था। गोविन्दी से अच्छा काम भला कौन करता? फिर अब उसे कोई छुड़ा भी नहीं सकेगा। शम्भू की बड़ी बेटी ब्याह के योग्य हो रही है। इसके लिए उसे और कर्ज़ चाहिए ।

पर भाग्य की बात। एक रात नगर के एक बड़े व्यापारी करोड़ीमल के घर चोर घुसे। उसने चोरों को मारने के लिए बंदूक चलाई। चोर तो कहीं नहीं थे। हां गोली एक काली बिल्ली को लग गई जो रोशनदान से घर में घुस रही थी । घर में सब जाग गए। बड़ी-बूढ़ियों ने कहा कि बिल्ली को मारने से पाप लगता है। सुबह ही पंडित को बुलवाया गया । पंडित ने कहा, "जिजमान को प्रायश्चित करना होगा ।

तेरह दिन तक घर का अन्न ग्रहण न करें। रोज किसी नये मुहल्ले में जाएं। वहां सिर्फ एक घर से ही भिक्षा मांगें। एक ही समय खाना खाएं। तेरहवें दिन बिल्ली का क्रिया कर्म करके सोने की छोटी सी बिल्ली दान दें। तभी पाप छूटेगा।"

व्यापारी के कुछ मित्रों ने इस प्रायश्चित में व्यापारी का साथ निभाने का प्रण किया। व्यापारी उनके साथ किसी एक घर भिक्षा मांगने जाता। व्यापारी को सभी जानते थे। बड़े आदर सत्कार से उन्हें बिठालते। बढ़िया खाना खिलाते।

एक दिन वे लोग इस साहूकार के मुहल्ले में घुसे। साहूकार ने अपनी ऊंची अटारी से इन्हें देख लिया। उसे डर लगा कहीं ये चौकड़ी मेरे ही घर खाने न आ धमके। वह गोविन्दी से बोला—"गोविन्दी कोई भिक्षा मांगने आए तो बता देना मैं घर में नहीं हूं। मेरा कुछ मत देना।" फिर वह अपने बच्चों आदि को लेकर पिछवाड़े के दरवाज़े से खिसक गया।

थोड़ी ही देर में व्यापारी अपने साथियों के साथ वहां पहुंचा। गोविन्दी ने कहा—"मालिक लोग तो सब बाहर गए हैं। पता नहीं कब लौटें।"

व्यापारी ने सब बात गोविन्दी को बता कर कहा, "अब हम दूसरे घर मांगने नहीं जा सकते। चाबियां हों तो भंडारे से कुछ निकाल दो।"

गोविन्दी बोला—"चाबियां तो हैं, पर बिना मालिक की आज्ञा के, कुछ निकाल कैसे सकता हूं।"

अब व्यापारी के एक मित्र ने कहा "तू नहीं निकाल सकता, वे तेरे मालिक हैं। पर हम तो निकाल सकते हैं, हम उनके परिचित हैं।" यह कह कर वह अंदर घुसने लगा।

गोविन्दी अपने हाथ फैलाकर दरवाज़ा रोक कर खड़ा हो गया, "क्षमा करें। अपनी जान के रहते मैं मालिक की किसी चीज़ में हाथ लगाने और घर में घुसने कैसे दूं।"

व्यापारी को इतना झंझट करने में बड़ी ग्लानि लग रही थी। वह चुपचाप लौट पड़ा तो सब पलट लिए। चलने लगे तो गोविन्दी सामने आकर विनम्रता से बोला, "मेरी मजबूरी जान कर क्षमा करें। ज़रा ठहरें मैं कुछ लेकर अभी आता हूं नहीं तो आज आप भूखे ही रह जाएंगे।"

गोविन्दी भागा-भागा अन्दर गया और कुछ कागज़ में लपेट कर खुशी-खुशी बाहर आया।

व्यापारी के मित्र ने कागज़ खोला। उसमें सूखी रोटियां थीं। उन्हें फेंकते हुए बोला, "क्या कुत्ते का खाना उठा लाया है।"

गोविन्दी सहम गया, वह घबरा कर बोला, "नहीं सेठ जी, यह तो दिन भर के लिए मेरा भोजन है।" और फिर उसकी आंखों से टप-टप आंसू गिरने लगे।

व्यापारी जब से आया था इस छोटे-से लड़के की स्वामिभक्ति, ईमानदारी



"कुत्ते का नहीं यह तो दिनभर के लिए मेरा भोजन है।"

भौर साहस की मन ही मन सराहना कर रहा था। अब उसने गोविन्दी का कोमल हृदय भी देख लिया ।

व्यापारी ने भूमि से रोटियों के टुकड़े उठाए और प्यार से गोविन्दी की पीठ थपथपाई। उसने गोविन्दी से उसके बारे में पूरी जानकारी ली।

शम्भू सूद के रुपये लेकर साहूकार के घर जाने ही वाला था कि व्यापारी ने वहां जाकर पूछा, "तुम गोविन्दी के पिता शम्भू हो?"

"हां बाबू जी," शम्भू की आवाज़ थकी हुई थी।

व्यापारी ने कहा—"मैं व्यापारी करोड़ीमल हूं। मैं गोविन्दी से मिला हूं। क्या तुम उसे मेरे पास रख सकते हो? मैं उसे बड़े आराम से रखूंगा।"

शम्भू ने आह भरी—"अपनी बात से कैसे फिर जाऊं। जब तक साहजी का पूरा पैसा नहीं लौटा देता, बेटे को कैसे वापस लाऊं?"

व्यापारी बोला—"जितना उधार तुम्हें देना है, मुझसे ले लो। गोविन्दी को साहूकार के चंगुल से छुड़ा लाओ शम्भू।"

शम्भू बोला—"पर सेठ जी तब मैं आपका कर्ज़दार हो जाऊंगा। आपका पैसा कहां से चुकाऊंगा। मेरा बेटा तो गिरवी रहा ही।"

व्यापारी बोला—"नहीं शम्भू! मैं उसे गिरवी नहीं रख रहा। उसे अपना मुनीम बनाऊंगा। अच्छा वेतन दूंगा। मैंने गोविन्दी की ईमानदारी देखी है। भंडार घर की चाबियां होते हुए भी जो रूखा-सूखा खाता है इतना ईमानदार मुनीम मुझे और कहां मिलेगा।"

व्यापारी ने अपना भरा बटुआ शम्भू को पकड़ा दिया।

शम्भू ने कहा—"सेठ जी, बटुए में रुपये गिन तो लें।"

व्यापारी बोला—"शम्भू, ईमानदार आदमी की औलाद ही इतनी ईमानदार हो सकती है जितना तेरा गोविन्दी है। जाओ देर न करो।"

आज पहली बार किसी बड़े आदमी ने शम्भू की ईमानदारी को पहचाना था। खुशी से उसका हृदय भर आया। उसके कमज़ोर पैरों में न जाने कहां की ताकत आ गई कि वह दौड़ता हुआ साहूकार के घर की ओर चल दिया। गोविन्दी का उज्ज्वल भविष्य उसके सामने था। उसकी खुशी की सीमा न थी। तभी उसे कुछ प्रश्न चुभने लगे। उसने सोचा, 'अभी एक गोविन्दी लगा है। पर इतने बड़े परिवार को लगाते-लगाते क्या फिर उधार के लिए चक्कर लगाने पड़ेंगे? नहीं, अब गोविन्दी उसकी मदद करेगा। सब पैसा देगा। पर तब क्या गोविन्दी फिर सूखी रोटी खाने के लिए मजबूर नहीं होगा। क्या बेटे की आधी उम्र यूं ही बीत जाएगी। नहीं कुछ भी हो अब वह अपने गोविन्दी पर और जुल्म नहीं कर सकता।'

शम्भू साहूकार के घर पहुंचा। सारा उधार निवटाया। वह गोविन्दी को ले

कर चलने लगा तो कंजूस साहूकार ने अपनी दी हुई सारी चीज़ें वापस रखा लीं। यहां तक कि टूटी चप्पलें भी।

रास्ते में शम्भू ने बड़े प्यार से कहा—"गोविन्दी, तेरे पैरों में कंकर चुभ रहे होंगे, बेटा।"

गोविन्दी बोला—"बापू पता नहीं आज क्यों छोटे-छोटे कंकरों की ये चुभन बड़ी भली लग रही है। जी कर रहा है, इन पर तेज़ भागूं।"

शम्भू बुदबुदाया—"हां बेटा! आज तेरे पैरों की बेड़ियां जो कटी हैं। आजाद राहों की छोटी-छोटी चुभन भी मीठी होती है, रे गोविन्दी।"

घर की ओर उठते दोनों के कदम और तेज़ हो गए।

"क्या बताऊं ? कुछ भी तो नहीं," वह आदमी बोला।

"कुछ नहीं तो साधु-संतों की-सी केश सज्जा हटाओ। मैं तुम्हारा राजा का वैसा रूप देखना चाहता हूं।" शिष्य ने उसके केश खोलने की चेष्टा की।

वह केश खोलने को तैयार न था, शिष्य ने भी ज़िद पकड़ ली। आदमी ने झुंझलाकर अपने केश खोल दिए। और बोला, "लो देखो मेरा राजा वाला रूप।" शिष्य की आंखें चुधियां गईं। एक मणि मस्तक पर चमक उठी। शिष्य ने आंखें मलते-मलते जब उस को निहारा तो उसका नीचे का धड़ सांप बन चुका था। शिष्य डर से चीख उठा।

वह बोला, "भेद तुम पर जब प्रकट हो ही गया है तो सुनो— मैं नागराज हूं.... मेरी ही सांसों से जो विष छूटता है उसी से तुम रात को बेहोश हो जाते हो। तुम्हें कुछ नुकसान न हो जाए, इससे मैं तुरन्त लौट जाता हूं। तुम मुझे बहुत प्रिय हो। मेरे मित्र हो। आओ गले मिल लें।" ये कह वह शिष्य से लिपट गया। शिष्य थर-थर कांपने लगा। उसे लगा जैसे उसके शरीर को एक मोटी रस्सी कसती जा रही है।

अब नागराज रोज आता। प्यार से गले मिलता, पर शिष्य तो डर से सूख कर स्याह लकड़ी-सा हो गया। उसका खाना-पीना सब छूट गया।

साधु महाराज आए। चेला उनके चरणों में लोट गया और बोला—"प्रभो अपने साथ मुझे ले चलो नहीं तो कहीं भाग जाऊंगा।" उसने रो-रोकर सारी घटना बता दी।

"पर तुम जहां भी जाओगे नागराज तुम्हारा पीछा करने में सक्षम है।" महात्मा ने चिन्ता व्यक्त की। फिर वह ध्यानमग्न हो गए। थोड़ी देर में शिष्य के कान में साधु ने कुछ कहा। फिर धीरे-धीरे कुटी से बाहर चले गए।

रात को नागराज आया। शिष्य इठलाता हुआ बोला, "हमारी तुम्हारी मित्रता कैसी है? आज तक बस मैंने ही भजन सुना कर तुम्हें श्रवण सुख दिया है।"

नागराज बोला, "मैं तुम्हें दे ही क्या सकता हूं ? मेरा राज्य तो समुद्र के नीचे पाताल लोक में है।"

शिष्य ने झट कहा—"वाह ! दे क्यों नहीं सकते। मुझे अपनी ये मणि दे दो।"

नागराज सकपका गए। अटकते हुए बोले, "ओह आज जरा मैं जल्दी में हूं, कल आकर इस बारे में बात करूंगा।"

कई दिन बीत गए नागराज नहीं आए। फिर एक रात को नागराज पधारे, उनके हाथ में मोती भरा थाल था।

शिष्य बोला—"ये क्या लाए हो मैंने तो मणि मांगी थी। उससे तुम्हारी मित्रता की ज्योति मेरी कुटी में जगमगाती रहेगी।"

नागराज फिर दो-चार दिन में मणि देने का वायदा करके चले गए।

कई सप्ताह बीत गए नागराज नहीं आए। एक रात अचानक पहुंच गए, तो एक सुन्दर कन्या उनके साथ थी।

शिष्य बोला—"घर गृहस्थी बसानी होती तो गांव छोड़ कर ही क्यों आता। मुझे केवल मणि ही दे दो। उसकी ज्योति में भागवत पाठ करूंगा।"

फिर महीनों नागराज के दर्शन नहीं हुए। ···· एक आध बार द्वार पर आहट-सी हुई। शिष्य अन्दर से ही आवाज लगाता ··· "मित्र आ गए ? क्या मणि ले आए। अन्दर आ जाओ"। उसके बाद सिर्फ सर्र की सी एक आवाज सुनाई देती थी।

शिष्य अब खुश था, मन लगाकर भगवत भजन करता ···साधु महात्मा फिर घूमते हुए आए। शिष्य ने दण्डवत प्रणाम कर पूरी बात कह सुनाई····। साधु बोले: "अब तो तू चिन्तामुक्त है। अब मैं चलता हूं।"

शिष्य बोला—"प्रभो, गुरुमंत्र तो देते जाओ। साधु महात्मा ने कहा, मूर्ख गुरु-मंत्र तो मैं तुझे कान में दे चुका था, कि मांगने से मित्रता टूटती है। सम्बन्ध टूटते हैं। तुझे समझ जाना चाहिए था कि गुरु तुम्हें जब जिस योग्य समझेगा खुद ही दे देगा।" अब तो मुझे यह भी सोचना पड़ेगा कि तुम मेरे शिष्य बनने के योग्य भी हो कि नहीं।

ये कह कर साधु महात्मा धीरे-धीरे चले गए।

समय की पहचान

एक बार एक देश में वर्षा नहीं हुई। धरती प्यास से चटखने लगी। फसलें सूखने लगीं। कोई बादल का टुकड़ा आसमान में दीखता तो लोग उसे टुकुर-टुकुर ताकते। पर वह बिना बरसे निकल जाता। तालाबों का पानी भी सूखने लगा। देश में त्राहि-त्राहि मच गई। राजा बूढ़ा था। वह आराम से महल में पड़ा रहता। हार कर जनता ने फरियाद की, "महाराज कुछ करें। हम भूखे प्यासे मर रहे हैं।" कुछ सोच कर राजा ने यज्ञ शुरू करा दिया। जनता कुछ समय के लिए पूजा पाठ में उलझ गई। यज्ञ खत्म हो गया। पानी फिर भी नहीं बरसा। लोगों ने फिर फरियाद की तो राजा ने कहा--"मैं जो कर सकता था किया। लगता है, प्रजा का भाग्य ही खोटा है।"

वहां एक साधु भी खड़े थे वह बोले--"जहां राजा ही धर्म पर न चले वहां प्रजा का भाग्य तो खोटा है ही।"

राजा क्रोधित हुआ-- "क्या मतलब ?"

साधु बोले--"राजन आप 80 वर्ष पार कर चुके हैं। धर्मानुसार आपको कब का राजपाट छोड़ देना चाहिए था और भगवत भजन में लीन हो जाना चाहिए था। अब वर्षा तभी होगी जब आप किसी योग्य व्यक्ति को गद्दी पर बिठा देंगे।"

राजा गद्दी नहीं छोड़ना चाहता था। वह चुप रहा। प्रजा ने फिर आवाज उठाई--"महाराज आपके कांपते हाथ हमारी रक्षा नहीं कर पा रहे। हमें फ़ौलादी हाथों वाला योग्य शासक दीजिए।"

राजा ने कोई चारा न देख कर कहा--"ठीक है मेरी दो रानियों से दो बेटे हैं। मंत्रिगण और पंडित बताएं, मैं किसे राज्य दूं।"

इस बात पर लोगों में दो मत हो गए। मंत्री बोले--"महाराज गद्दी पर हक बड़े का होता है। बड़े कुमार विद्वान हैं। शान शौकत से रहते हैं। दूसरे देश भी उन्हें सम्मान देते हैं। वे उनके मित्र हैं। मुसीबत में वह हमारा साथ देंगे।"

पंडितों ने कहा--"गद्दी का हकदार वह जिसे प्रजा चाहे। छोटे कुमार विद्वान हैं, सरल और सीधे हैं। गरीबों का दुःख-दर्द समझते हैं। जनता उन्हें प्यार करती है। हर मुश्किल में उनका साथ देगी।"

"राजा कौन हो", इस प्रश्न को लेकर सभा में कोलाहल मच गया।

राजा तो यह जानता ही था। उसने कहा--"आप लोग निर्णय कर लें तो मुझे बता दें।"

यूं बात काफी दिनों तक टल गई। पर भूखे पेट लड़ाई कब तक चलती। सब मिल कर फिर राजा के पास आए और बोले—"महाराज आज तक हर बात का निर्णय आपने ही दिया है। 'राजा कौन हो' इस प्रश्न को भी सुलझा दें।"

राजा को अपनी गद्दी का मोह अपनी सन्तान से भी ज्यादा था। राजा बोला—"ठीक है राजकुमारों को अपनी योग्यता सिद्ध करनी होगी। पहाड़ी की तराई में एक घना जंगल है। वह शेर चीतों से भरा है। जंगल के बीच में एक मंदिर है। वहां रत्न जड़ित दो तलवारें रखी हैं। जो राजकुमार अपनी तलवार पहले ले आएगा वही गद्दी पर बैठेगा। एक शर्त और जंगल में अकेले-अकेले और बिना हथियार के जाना होगा।"

राजा ने सोचा था, राजकुमार डर कर जाने से मना कर देंगे। पर दोनों राजकुमार जाने को तैयार हो गए। अब राजा ने एक और चाल चली जिससे फिर बहस चले। उसने कहा जंगल के दो रास्ते हैं। पूरब का सीधा और पश्चिम का टेढ़ा। बताओ, कौन किस रास्ते से जाएगा?

बड़ा झट बोल उठा— "मैं बड़ा हूं, पहले मैं चुनूंगा। मैं पूरब से जाऊंगा।"

छोटा चुप रहा।

दोनों रानियों ने कई दिन का खाना-पीना अपने बेटों के साथ रख दिया। दोनों राजकुमार चल दिए। दोनों अलग-अलग रास्तों से जंगल में घुसे। जंगल घना था। लौटते समय रास्ता भूलने का डर था। दोनों ने सोचा कोई निशानी बनाते चलें।

बड़े ने झट निर्णय लिया कि उसके पास जो इतना खाना है उसी में से कुछ निशानी के तौर पर डालता चलेगा। उसने वैसा ही किया।

छोटा कुछ देर रुक कर सोचता रहा। क्या करे। तलवार भी पास नहीं जो निशानी पेड़ों पर बना सके। तभी उसे एक तरकीब सूझी। उसने बहुत सारे कंकड़ ढेले इकट्ठे किए। रास्ते में वह उन्हीं को बिखेरता गया।

छोटा कुमार जब मन्दिर पहुंचा तो वहां सिर्फ एक ही तलवार रखी थी। वह समझ गया भइया अपनी तलवार ले जा चुके हैं। पर उसने धीरज नहीं खोया। मंदिर का गंदा आंगन साफ़ किया। फिर मां को प्रणाम कर तलवार उठा कर तुरन्त लौटा।

उधर बड़ा राजकुमार आधे रास्ते तो बड़े आराम से निकल आया था। पर अचानक उसने देखा कि उसके खाने के टुकड़े पशु पक्षी लिए जा रहे हैं। देखते-देखते उसके सामने का रास्ता गायब हो गया। कुमार भटक गया। जगल का आर-पार ही न आता। उसका घोड़ा थक कर मर गया। उसका भोजन खत्म हो गया। भूख के मारे उसका बुरा हाल था। राजकुमार पछताने लगा कि उसने अन्न फेंका, इसीलिए उसे यह दिन देखना पड़ा। उसका हाल बुरा था। दाढ़ी मूंछ निकल आई



"देखते-देखते बड़े कुमार की आंखों के आगे से रास्ता मिट गया।"

थी। कपड़े फट गए थे। कमज़ोरी के मारे उससे चला नहीं जा रहा था। भटकता-भटकता वह एक दिन नगर की सीमा पर पहुंच गया।

देश की मिट्टी से उठती सौंधी सुगंध से उसे शान्ति मिली। तभी उसका माथा ठनका। क्या बारिश हो चुकी है? क्या छोटा राजकुमार गद्दी पर बैठ चुका है? बाज़ी हार कर नगर में जाऊं? नहीं! अपने विदेशी मित्रों से सहायता ले, भाई से राज्य छीनूंगा। पर ये भी तो हो सकता है बारिश अपने आप हो गई हो। छोटा राजकुमार भी कहीं भटक रहा हो। दूसरे विचार से उसे शान्ति मिली। सही बात जानने के लिए वह नगर में चल दिया।

रास्ते में उसे किसी ने नहीं पहचाना। वह बढ़ता ही गया। जहां से भी गुज़रा वहां हरियाली पाई। कहीं कुएं खुदे थे तो कहीं नहर बनी थी। खेतों में किसान काम पर जुटे थे। चलते-चलते वह मंदिर के पास पहुंचा। उस समय अन्दर आरती हो रही थी। बहुत से लोग बाहर कतार में प्रसाद पाने के लिए खड़े थे। उसे भी जोरों की भूख लगी थी। सोचा, प्रसाद ही खा लूं। बड़ा राजकुमार उन मामूली लोगों की भीड़ में खड़ा हो गया।

आरती खत्म हुई। पुजारी प्रसाद का थाल लेकर बाहर आया। उसके साथ था राजा के वेष में छोटा राजकुमार। बड़े राजकुमार का दिल जोर-जोर से धड़कने

लगा। पहचाने जाने के भय से उसने अब मुंह पर कपड़ा डाल लिया। प्रसाद बांटते-बांटते पुजारी और छोटा राजकुमार उसके पास भी आए। बड़े राजकुमार का बदन ईर्ष्या से जलने लगा। उसने सिर हिला कर प्रसाद लेने से मना कर दिया।

छोटे राजकुमार ने कहा, "प्रसाद को मना नहीं करते। बाबा! इसे खा कर मुझे दुआ देना। मेरा बिछड़ा भाई मुझे मिल जाए।"

पुजारी बोल उठा--"हां बाबा, दुआ दो। हमारे महाराज तो फलाहार पर रहते हैं। अन्न तभी खाएंगे जब भाई लौट आएगा।"

बड़े राजकुमार की ईर्ष्या अब ग्लानि में बदल गई। उसने सोचा, मैं उस भाई को मरवाना चाहता था, जो मेरे लिए तप कर रहा है। उससे और रुका नहीं गया। झट मुंह का कपड़ा हटा दिया और बोला, "महाराज! आपका भाई लौट आया है।"

अपने को पहचानने में कितनी देर लगती है। झट से दोनों भाई गले मिले।

इस समय आसमान से पानी तो नहीं बरसा, पर दोनों भाइयों की आंखों से जो आंसू बरस रहे थे उनसे मन का सारा कलुष धुल गया और लोगों में खुशी की लहर दौड़ गई।

अगला जन्म

किसी नगरी में धनीराम नामक एक धनी रहता था। उसके पास काफी धन था। कभी अपनी तिजोरी खोलता, तो सोने-चांदी के भंडार को देखकर घर वाले भी चौंक उठते थे। इस धन-सम्पत्ति से उसे बहुत लगाव था। दिन-रात धन जोड़ने की जुगत में लगा रहता था।

धनीराम बूढ़ा होने लगा था। बाल-बच्चे बड़े हो गए थे। पहले जैसी शक्ति उसमें थी नहीं, इसलिए धीरे-धीरे कामधन्धे का भार लड़के उठाने लगे। मगर इससे वह खुश नहीं था। उसे चिन्ता सताती रहती। सोचता—'कहीं बच्चे मेहनत से जुड़ी इस सम्पत्ति को फिज़ूलखर्ची में न उड़ा दें।' इसलिए तिजोरी की चाबी अपने पास ही रखता।

एक दिन एक साधु धनीराम के द्वार पर आए। धनीराम को साधु बहुत चमत्कारी लगे। उसने वड़ी श्रद्धा से उनके चरण छुए। बहुत आदर सम्मान दिया। फिर साधु के आगे तश्तरी में मिठाई रख दी।

साधु ने कुछ खाया नहीं। बोले—"सेठ, मैं कंद-मूल आदि ही खाता हूं। जंगलों में रहता हूं। इधर से गुजर रहा था, तुम्हारी हवेली देखी, तो चला आया। मैं सोचता था, तुम बहुत सुखी होगे, मगर तुम्हारे चेहरे पर सुख का एक भी चिन्ह नहीं। तुम चिंताओं के जाल में जकड़े हुए हो। क्या तुम सचमुच सुखी हो?"

"महाराज, घर-गृहस्थी में सुख-चैन कैसा? पता नहीं, इस जंजाल से कब मुक्ति मिलेगी? आप धन्य हैं। आपको तो जीवित ही स्वर्ग जैसा सुख मिल रहा है," धनीराम बोला।

साधु मुस्कराए। कहने लगे—"धनीराम जी, तुम्हें भी जीते-जी स्वर्ग भेज सकता हूं। इस सारी मोह-ममता को छोड़, मेरे साथ चलो।"

"अच्छा, आप मुझे स्वर्ग भेज सकते हैं। इससे बड़ा अवसर और क्या मिलेगा," धनीराम खुशी से बोला। तभी उसका हाथ जेब में रखे चाबी के गुच्छे पर गया। अचानक उसका चेहरा उतर गया। सारा उत्साह भंग हो गया। मुंह लटका कर बोला—"महाराज, आप ठीक कहते हैं, मगर इस उम्र में आपके साथ जंगलों में घूमना मेरे लिए कठिन है। आदत भी नहीं है। फिर बाल-बच्चे अभी व्यापार में कच्चे हैं। मुझे कुछ दिन की मोहलत दें। सारी जिम्मेदारी लड़कों को सौंप दूं फिर निश्चिन्त होकर आपके साथ चलूंगा।"

महात्मा जी उसके मन की बात समझ गए। बोले—"ठीक है। जैसी तुम्हारी इच्छा। मैं फिर आऊंगा। तभी चले चलना।"

धीरे-धीरे कुछ वर्ष और गुजर गए। एक दिन वही साधु फिर धनीराम के पास आ पहुंचे। उस समय धनीराम पोते को गोद में खिला रहा था। साधु को देख, प्रणाम किया। कुशल पूछने के बाद साधु ने कहा––"कहो सेठ, अब क्या विचार है? अब तो तुम्हारे बेटों के भी बाल बच्चे हो गए हैं। बेटों को काम-धाम भी सिखा दिया।"

धनीराम चुप। कभी साधु की ओर देखता, कभी पोते की ओर। कुछ कह न सका। फिर धनीराम ने साधु के पैर पकड़ लिए। बोला––"आप ठीक ही कहते हैं, मगर इस पोते ने मुझे मुसीबत में डाल रखा है। इसका पिता व्यापार में उलझा रहता है। मां को इधर-उधर घूमने से फुरसत नहीं। मुझे इसी की चिंता है। थोड़ा बड़ा हो जाए। पैरों चलने लगे, तब बेफिक्र हो मैं आपके साथ जरूर चलूंगा। मैं तो उसी दिन के इन्तजार में हूं जब घर-गृहस्थी का झंझट सिर से हटे।"

साधु ने कहा––"ठीक है। अभी ठहर जाता हूं। फिर आऊंगा। मगर इस बार तैयार रहना।"

धनीराम ने हामी भर दी। साधु चले गए। समय अपनी गति से भाग रहा था। इसी तरह काफी समय बीत गया। एक दिन साधु फिर धनीराम के घर आ पहुंचे।

पूछने पर पता चला कि धनीराम को मरे दो वर्ष बीत चुके हैं। साधु ने तपोबल से देखा, धनीराम कुत्ता बना दरवाजे पर बैठा है।

साधु कुत्ते के पास गए। कान में कहा––"देखा, धन के लालच का फल। मेरे साथ चले चलते, तो कुत्ता क्यों बनते। अब भी समय है। चलो, इस योनि से मुक्ति दिला दूंगा।"

साधु की बात सुन, कुत्ते ने कान फड़फड़ाया। कहा––"अब तो जो होना था, हो गया। मगर मुझे यह संतोष है कि मर कर कुत्ता ही बना। अब अपनी कमाई धन-सम्पत्ति की रक्षा तो कर रहा हूं। दोनों बेटे एक से एक बढ़कर हैं। रात को तान कर सोते हैं। मैं न होऊं तो चोर धन चुरा कर ले जा सकते हैं। भला, स्वर्ग कौन नहीं जाना चाहता। आप कुछ दिन और ठहर जाएं। बेटे बूढ़े होने लगेंगे तो घर में रहेंगे। तब मैं आपके साथ चलूंगा।"

साधु ने कुत्ते को देखा। धीरे से कहा––"तेरी मर्ज़ी।"

पांच-छह साल और बीत गए। घूमते-फिरते साधु फिर धनीराम की हवेली के पास से गुजरे। उन्हें कुत्ते का ध्यान आया। दरवाज़े पर देखा, इधर-उधर ढूंढा, मगर कुत्ता नहीं मिला। सामने धनीराम का बेटा आ रहा था। उसके बाल भी अब पकने लगे थे। साधु ने पूछा––"अरे भाई! पांच-छह वर्ष पहले मैंने एक काला कुत्ता देखा था। वह तुम्हारा पालतू था। कहां गया"?

धनीराम का बेटा उत्सुकता से साधु की ओर देखने लगा। बोला––"जी, वह तो पिछले साल मर गया। आप उसे पूछ क्यों रहे हैं?"

"कुछ नहीं, वैसे ही" कह कर साधु ने उसे टाल दिया। फिर तपोबल से धनीराम के नये जन्म की खोज की। पता चला, धनीराम तीसरे जन्म में मेंढक बना है।



"अब से तू स्वर्ग-नरक के चक्कर में जीवन भर टर्र-टर्र करता रहेगा।"

इस समय वह हवेली के पास बने कुएं में रह रहा है।

साधु कुएं के पास गया। उन्होंने आवाज लगाई। साधु की आवाज़ सुन मेंढक को अपने पिछले जन्म की याद आ गई। वह फुदक कर पानी के ऊपर आ गया। साधु ने तपोबल से उसे कुएं के ऊपर बुला लिया।

साधु ने कहा––"अरे धनीराम। देख ली अपनी गत। छोड़ अब इस चोले को। चल जल्दी से मेरे साथ चल। तुझे स्वर्ग पहुंचा दूंगा।"

मेंढक बोला––"महाराज मेरे पोते की बहुएं कुएं पर पानी भरने, नहाने आती हैं। मैं उनके ज़ेवर की रखवाली करता हूं। पोते नहाने आते हैं, तो व्यापार धन-दौलत की बात करते हैं, कलेजा ठंडा हो जाता है।"

साधु ने कहा––"अरे मूर्ख? अब भी कुछ चेत जा।"

मेंढक ने पानी के अंदर छलांग मारी। कहा––"साधु जी, आप भी हाथ धोकर मेरे पीछे पड़े हैं। भला अपनी हवेली को छोड़ मैं स्वर्ग क्यों जाने लगा। आप क्यों नहीं चले जाते स्वर्ग?" मेंढक टर्र-टर्र बोलने लगा।

साधु को क्रोध आ गया। उन्होंने शाप देते हुए कहा "जा अब से तू स्वर्ग-नरक के चक्कर में जीवन भर टर्र-टर्र ही करता रहेगा।"

बिना विचारे जो करे

एक था राजकुमार। नाम था नरेन्द्र। राजा का बड़ा लाड़ला-दुलारा। अकेला बेटा था। वह हर समय आमोद-प्रमोद में लीन रहता। उसके ढेरों मित्र थे, जो बड़े-बड़े व्यापारियों के बेटे थे। राजा कभी-कभी समझाने की कोशिश करता, "बेटा कुछ राज-काज भी सीखो। मैं अब बहुत बूढ़ा हो गया हूं।"

राजकुमार हँस देता, "पिता जी, आप हैं, तभी तक तो मौज-मस्ती कर सकता हूं। मैं आपको सौ साल अभी मरने नहीं दूंगा।"

आदमी चाहता कुछ है, पर होता कुछ। विधि के विधान में कुछ और लिखा था। राजा का बहुत जल्दी देहान्त हो गया। कुमार नरेन्द्र गद्दी पर बैठा। परन्तु काम-काज उसे अब भी झंझट लगता था।

बूढ़ा मंत्री बड़ा वफादार था। वह धन-सम्पत्ति के मामले में राजा की राय लेने आता। राजा कहता, "आप तो वर्षों से यह झंझट सुलझाते ही आए हैं। मुझे आप पर पूरा विश्वास है। जहां कहें हस्ताक्षर कर दूं"।

राजा हर समय अपनी मित्र मंडली से घिरा रहता। मित्र व्यापारियों के बेटे थे जो हर चीज में अपना लाभ सोचते। राजा तो उनकी मुट्ठी में था, पर बूढ़ा मंत्री हर चीज के उचित दाम ही लगाता। मित्र मंडली ने मंत्री के खिलाफ कह कर भी देखा, पर राजा चुप रहता। मित्र मंडली अब ऐसे मौके की तलाश करने लगी जिससे राजा को उकसा कर मंत्री को निकाल दिया जाए।

कहते हैं, बिल्ली के भाग से छींका टूटता है। पर यहां मित्र मंडली के भाग से रानी का मोतियों का सतलड़ा हार टूट गया। उसकी एक लड़ी न जाने कहां गिर पड़ी। राजा ने हार बनाने का काम मंत्री को सौंप दिया। मंत्री ने खुद बड़े जौहरी के यहां जाकर वैसी ही मोतियों की एक लड़ी सतलड़े में डलवाई। मंत्री ने एक हजार सोने की मुद्राएं जौहरी को देकर, माला राजा को सौंप दी।

कुछ ही दिन बाद वही जौहरी बहुत ही सुन्दर और बड़े मोतियों की उतनी ही बड़ी एक माला लेकर महल में आया। माला राजा को दिखाता हुआ बोला, "महाराज मैंने महारानी का सतलड़ा ठीक किया था। पर मैं चाहता हूं, हमारी महारानी का सतलड़ा तो ऐसे मोतियों का बने जो किसी के पास भी न हो।"

राजा को मोती बहुत पसन्द आए। उन्होंने उस एक लड़ी के दाम पूछे। जौहरी बोला, "महाराज यही कोई आठ सौ सोने की मोहरें।"

राजा बोला—"यह मोती तो सतलड़े के मोती से अच्छा ही लगता है।"

व्यापारी बोला—"हां महाराज! इसीलिए तो इस माला के दाम उस माला से सौ मुद्राएं ज्यादा हैं।"

यह सुनते ही राजा सोच में डूब गया। महारानी से राय लेने का बहाना कर के राजा ने जौहरी को तो टाल दिया। पर खुद चिन्ता में टहलने लगा। 'क्या उसके मित्र ठीक कहते हैं? मंत्री पैसों की हेराफेरी करता है? जिसने रानी के हार में तीन सौ मुद्राएं बना लीं, वह साधारण आदमी से कितनी घूस लेता होगा।'

राजा ने बिना जांच-पड़ताल किए मंत्री को पद से हटा दिया।

मित्र मंडली का काम बन गया। उन्होंने राजा को नया मंत्री दिया। उन्होंने अब राजा को आमोद-प्रमोद में अधिक उलझाया।

नए मंत्री के पद संभालते ही राज्य में सोने के भाव जल्दी-जल्दी उतरने-चढ़ने लगे। मित्र मंडली को जब कोई अपनी चीज़ राज्य को बेचनी होती तो सोने के भाव गिर जाते। वे अपनी छोटी-सी चीज के लिए बहुत सारी सोने की मुद्राएं कोष से निकाल लेते। और जब राज्य की कोई चीज मित्र मंडली को खरीदनी होती तो सोने के भाव बहुत ऊंचे होते। यानी थोड़ी-सी सोने की मुद्राएं देकर वे राज्य के बड़े-बड़े भवन खरीद लेते। मित्रों के घर भरने लगे। राज-कोष खाली होने लगा। पर राजा को कोई खबर न थी। विदेशी व्यापारी भी मित्र मंडली को घूस देकर चीजों के मनमाने दाम लेने लगे।

बूढ़ा मंत्री जब अपने पद से अलग हुआ था, उस समय कुछ नहीं बोला था। पर अब उससे चुप नहीं रहा जा रहा था। मगर कहता कैसे! राजा तो कभी अकेला रहता ही नहीं था।

दिवाली का त्यौहार आया। मित्र मंडली ने बड़े-बड़े उपहार राज लक्ष्मी को भेजे। लाल मखमल में लिपटा एक छोटा-सा उपहार बूढ़े मंत्री ने भी भेजा। रानी ने खोला तो वह एक अजीब चित्र था।

चित्र में मानसरोवर पर झील पर खड़े मोटे-मोटे बगुलों की चोंचों में मोटे-मोटे मोती दबे थे। दुबले-पतले राजहंसों की चोंचें खाली थीं।

रानी बड़ी बुद्धिमती थी। वह चित्र का अर्थ समझ गई। महल में जब लक्ष्मीपूजन की तैयारी होने लगी तो रानी बोली—"राजा को लक्ष्मी का पूजन तो राजकोष में ही करना चाहिए जिससे पूरे देश की सम्पदा बढ़े।"

राजा को बात जंच गई। वह पूजन करने राजकोष में गए। पूजन हुआ, पर राजकोष की असली हालत देख कर राजा भौचक्के रह गए। कोष लगभग खाली पड़ा था।

राजा को चिन्तित देख कर रानी बोली, "महाराज आज कैसी उदासी? चलिए नगर घूम आएं।"

सारा नगर दीपों से जगमगा रहा था। खिलौनों और मिठाइयों की दूकानें सजी थीं। पर खरीददारी कुछ ही लोग कर रहे थे। घूमते-घूमते राजा की सवारी एक बहुत



"महामंत्री, आपने हमारी आंखें खोल दीं।"

सुन्दर भवन के सामने से गुजरी। उसमें ग्रनेक पहरेदार खड़े थे। सोने-चांदी के कन्दील टंगे थे। ग्रंदर के नाच-रंग का बाहर तक संगीत ग्रा रहा था।

रानी ने पूछा—"यह किसका महल है, बड़ा सजा है।"

राजा को पता नहीं था। उसने सारथी से पूछा, "यहां कौन रहता है?"

उत्तर मिला—"नए मंत्री जी महाराज।"

राजा रानी महल लौट ग्राए। सारी तस्वीर ग्रब राजा क सामने साफ थी।

राजा बोला—"रानी ग्राज तुमने मेरी ग्रांखें खोल दीं।"

रानी ने कहा—"मैंने नहीं महाराज हमारे पुराने मंत्री की चतुराई ने।"

रानी ने उपहार वाला वह चित्र राजा को दिखा दिया। राजा ने पुराने मंत्री को बुलवाया और कहा, "महामंत्री, आपने हमारी आँखें खोल दीं।"

दूसरे दिन सुबह हो राजा ने पुराने मंत्री को बुलवाया। उससे पूरी स्थिति समझी और फिर मंत्री पद संभालने का आग्रह किया। बूढ़ा मंत्री बोला--

"महाराज मेरी जिन्दगी अब कितने दिन की है, मंत्री पद क्या संभालूं, राज्य तो आप ही को संभालना है।"

राजा को अपने पिता की याद आ गई। वह बोला, "आप मंत्री नहीं महामंत्री का पद संभालें। भगवान करे आप अभी सौ वर्ष और जिएं। पर मुझे जल्दी ही राज काज में पक्का कर दें।"

मैं आपके परामर्श से ही सारा राज काज करूँगा जिससे राज्य में किसी प्रकार का दोष न आ पाए।

दोनों हँस दिए। परन्तु राजा की बेचैनी अब भी नहीं गई। उसने दरबार बुलाने का आदेश दिया।

वहां उसने मंत्री से कहा, "तुम्हारा भवन हमारी राजलक्ष्मी को बहुत पसन्द आया। हम उसे आज ही खरीदना चाहते हैं।"

मंत्री को कहीं कुछ खटका। पर राजा से इन्कार कैसे करता बोला--"महाराज की जैसी इच्छा।"

राजा बोला, "ठीक है। पर मंत्री जी आज सोने का भाव बहुत ऊंचा है।" तुम्हारे भवन की कीमत पांच स्वर्णमुद्राओं में निबट जाएगी।"

ये कह कर राजा ने सैनिकों को मंत्री के महल पर कब्जा करने का हुक्म दे दिया।

अपनी सारी जमा-पूंजी केवल पांच स्वर्ण मुद्राओं में बिकते देखकर मंत्री को चक्कर आ गया। उसे समझते देर न लगी कि जिस चाल से उसने खजाना लूटा था, उसी से राजा उसे दण्ड दे रहा है।

बूढ़ा मंत्री अब महामंत्री नियुक्त हो चुका था। राजा की पुरानी मित्र मंडली अपनी स्थिति समझ गई थी। खजाना फिर भरने लगा था। पर पुरखों का जोड़ा धन, हीरे, जवाहरात, सोना, चांदी, जो भी विदेश पहुंच चुका था, राजा उसके लिए जन्म भर बस पश्चाताप करता रहा।

कर्तव्य का पुण्य

कहते हैं, एक समय एक देश में तीन आदमियों की मृत्यु एक ही समय हुई। मरे भी वे एक ही तरह से। महल में राजा, झोंपड़ी में साधु, और खेत में किसान। इन तीनों के प्राण सोते-सोते ही निकल गए।

राजा के मरने पर नगर भर में कोहराम मच गया। रोते हुए लोग महल में उमड़े चले आए। राजपंडितों ने गीता-रामायण का पाठ शुरू किया। लोग मृत राजा के गुणगान गाने लगे। रानियों के रोने-पीटने से सारा का सारा महल हिल गया। राजा की शवयात्रा बड़ी धूम-धाम से निकली। राजा ने अपने जीवन-काल में ही अपने स्मृति के रूप में एक बड़ी सुन्दर इमारत पहले ही बनवा दी थी जिससे लोग सदा उसे याद रखें।

साधु का भी बड़ा नाम था। उसके मरने पर दूर-दूर के साधु महात्मा इकट्ठे हुए। वे मंत्रों का जाप कर साधु की आत्मा की शांति और स्वर्ग जाने की कामना करने लगे। साधु की अन्तिम इच्छा के अनुसार कुटी में ही उसकी समाधि बनाने का काम शुरू हुआ। इसके लिए पूरी बस्ती ने दिल खोल कर दान दिया।

किसान के मरने पर पास पड़ौसी उसके घर गए। उन्होंने उसके बिलखते बच्चों को गले से लगा लिया। पर सांत्वना के अलावा उनके पास देने को और क्या था। सभी तो गरीब थे। वे किसान की इच्छानुसार नदी के किनारे उसके शव को जला आए। बाद में उसकी अस्थियों को नदी में बहा दिया।

इन तीनों को लेकर यमदूत एक ही समय, यमराज के दरबार में पहुंचे। उस समय यमराज किसी काम में व्यस्त थे। उन्होंने तीनों को पास ही चबूतरे पर बैठने का संकेत किया।

राजा को साधु और किसान के साथ बैठने पर लज्जा आ रही थी। साधु किसान से हट कर बैठना चाहता था—कहीं उससे छू कर अपवित्र न हो जाए। इधर किसान भी साधु और राजा के साथ बैठने की हिम्मत ही नहीं जुटा पा रहा था। इसलिए तीनों खड़े ही रहे।

यमराज ने फिर उनकी तरफ देखा। वे तीनों के मन के भाव ताड़ गए, मुस्कराए और तीनों को फिर बैठने का इशारा करके अपने काम में जुट गए। इस बार उन्होंने यमराज की आज्ञा का पालन किया। और कोई चारा था भी नहीं। राजा मन मसोस कर किसान के पास बैठ गया। साधु भी मन में कुछ बुदबुदाता दूसरी ओर खिसक कर बैठ गया।

थोड़ी देर में यमराज ने काम बंद किया। उन तीनों की तरफ देखा। वह सोचने लगे, 'क्यों न आज यह देखें कि आदमी अपने कर्मों के बारे में खुद कैसे सोचता है।' उन्होंने कहा :—

"राजन! जीवन भर तुम दूसरों को फैसला सुनाते रहे। तुम बताओ। तुमने जो अब तक काम किए उनके अनुसार तुम्हें स्वर्ग मिलना चाहिए या नरक?"

राजा बोला : "यमराज ! मैं क्षत्रिय कुल का हूं। मैंने अपने राज्य का विस्तार किया। खूब दान पुण्य किया। धर्मशालाएं बनवाईं। मंदिर बनवाए। देवी-देवताओं की मूर्तियां सोने से मढ़ीं। भगवान के धाम में मुझे एक स्थान मिलना ही चाहिए।"

यमराज ने अब साधु से पूछा, "आप क्या सोचते हैं? आप किसके अधिकारी हैं?"

साधु ने उत्तर दिया : "धर्मराज मैं ब्राह्मण कुल में जन्मा। मैंने धर्मशास्त्रों का अध्ययन किया। तीर्थ गया। भगवान का नाम लेने के लिए मैंने संसार त्याग दिया। धर्म का प्रचार किया। दिन रात पतितपावन का नाम रटता रहा। बस उनके दर्शनों की कसर थी। अब वह समय आ गया। मुझे उनके धाम जाने से कौन रोक सकता है।"

यमराज ने अब किसान से प्रश्न करना चाहा।

पर किसान तो पहले ही कांप गया और गिड़गिड़ाया, "प्रभो ! मुझसे क्या पूछना? किसान का बेटा हूं, न शास्त्र पढ़ सका न मन्दिर बनवा सका। रात-दिन बैलों के साथ खेतों पर जुता रहा। भजन-कीर्तन तक को समय न निकाल सका। मुझे भला स्वर्ग कहां?" किसान ने गर्दन झुका ली।

यमराज कुछ क्षण सोचते रहे फिर चित्रगुप्त से बोले :—

"चित्रगुप्त इन सबके कर्मों का लेखा-जोखा पढ़ कर इन्हें बता दो।"

चित्रगुप्त ने अपने बही खाते के पन्ने उल्टे-पल्टे। ध्यान से सब कुछ पढ़ा। फिर राजा से बोले :—

"राजा का असली कर्तव्य होता है प्रजा का पालन करना। आपने राज्य का विस्तार किया, यश अर्जित करने को। प्रजा के दुख हटाने को नहीं। आपने मूर्तियों को सोने से मढ़वाया पर गरीब के बच्चे नंगे बदन घूमते रहे। अपनी यादगार के लिए इतनी बड़ी इमारत खड़ी कर दी पर बेसहारा लोग ठिठुरती रातें खुले आसमान के नीचे काटते रहे। आप सीधे स्वर्ग नहीं जा सकते हैं।"

अब चित्रगुप्त साधु की ओर पलटे और बोले :—

"साधु बाबा आपने घर छोड़ा जब आपके बूढ़े माता-पिता को आपकी सेवा की जरूरत थी। आप संसार त्याग की बात करते हैं। आपने शास्त्रों का अध्ययन किया। पर व्यवहार में आप अपनी कुटी भी न त्याग सके। उसमें समाधि बनवा ली। पतित-पावन का नाम रटते रहे। पर खुद मनुष्य-मनुष्य में भेद करते रहे। बेईमान व्यापारी के



"थोड़ी देर और प्रभो! बेटे को खेत सींचते देख लूं।"

घर का भोजन खा लेते। ईमानदार हरिजन का पानी नहीं पीते। आप सीधे स्वर्ग जाने के अधिकारी नहीं हैं।"

चित्रगुप्त किसान की ओर मुड़े और बोले :—

"किसान का कर्तव्य है लोगों का पेट भरना। तुमने जीवन भर कड़ी मेहनत कर अनाज उगाया। काम ही तुम्हारी पूजा थी। फिर अपनी सारी भूमि को नई पीढ़ी के लिए छोड़ आए। अपने लिए कोई टुकड़ा नहीं रोका। तुम सच्चे त्यागी हो। तुम सीधे स्वर्ग के अधिकारी हो।"

राजा, साधु और किसान तीनों ही अपना-अपना भाग्य निर्णय सुन कर ठगे से रह गए।

कुछ देर बाद यमराज ने सन्नाटा तोड़ा. उन्होंने कहा—"अगर आप लोगों की कोई अन्तिम इच्छा हो तो बताइए।"

राजा ने महल, साधु ने कुटी और किसान ने अपना परिवार देखने की इच्छा प्रकट की।

यमराज बोले, "आंखें मीचिए। मेरे कहने पर ही खोलिएगा। तथास्तु।"

राजा सोच रहा था। महल में उसके ही चर्चे होंगे। लोग बिलख रहे होंगे। पर उसने देखा—

युवराज के राज्याभिषेक की तैयारियां हो रही हैं। लोग युवराज की प्रशंसा कर रहे हैं। उसकी कहीं चर्चा नहीं है। नर्तकियां जो उसका मन बहलाती थीं अब युवराज को आकर्षित करना चाह रही हैं। राजा घबड़ा कर चीखा, "मुझ से और नहीं देखा जाता।"

साधु ने सोचा था—'लोग उसकी समाधि पर जमा होंगे। पूजा-अर्चना हो रही होगी। धूप और अगर की सुगंध कुटी से महक रही होगी।' पर वहां कोई नहीं था। उसका अपना सामान भी लोग ले गए हैं। साधु निराश हो कर बड़बड़ाया—"यहां अब देखने को है ही क्या?"

किसान को डर था कि उसके बैल भूखे बंधे होंगे पर उसने देखा, बैलों को भूसा पड़ा था। पत्नी की आंखें गीली थीं। पर वह बेटे को समझा रही थी, "बेटा उठ बैल ले जा। खेतों में पानी नहीं लगा तो तेरे पिता के मेहनत से बोए खेत सूख जाएंगे।"

यमराज ने पूछा, "देख चुके किसान?" किसान आंखें मीचे ही गिड़गिड़ाया-"थोड़ी देर और प्रभो। बेटे को खेत सींचते देख लूं।"

"पर समय समाप्त हो चुका है। अब आंखें खोलिए।" यमराज की आवाज गूंजी।

सबने आंखें खोलीं। राजा घोर यातनाओं में खड़े थे। साधु के आगे सिर्फ काला अन्धकार था। महाशून्य सायं-सायं कर रहा था। किसान के आग फलदार पेड़ों की एक राह थी।

यमराज और उनका दरबार अब किसी के सामने नहीं था।

भगवान का न्याय

एक समय की बात है। लाला प्रसादी लाल नाम का एक व्यापारी एक गांव में आकर रहने लगा। वह गांव वालों से दस्तकारी की चीजें सस्ते दामों पर बनवाता। उन्हीं चीजों को शहर में चौगुने दामों पर बेचता। यूं उस के पास काफी धन इकट्ठा हो गया। पर उसे सदैव धन जोड़ने की लालसा बनी रहती। अब उसने विदेश जाकर व्यापार की सोची। इसके लिए उसे एक ईमानदार साथी की आवश्यकता थी। उसे किसान हुलासी का ध्यान आया।

हुलासी के पास पहुंच कर लाला प्रसादी लाल ने सारी योजना बताई। उसे सुन कर हुलासी बोला––"लाला जी आप ठहरे व्यापारी, जितना कमाते हैं वह कम लगता है। मैं हूं किसान अपनी खेती-बाड़ी छोड़कर कहां जाऊंगा। घर का सारा खर्च खेतों से निकल ही आता है।"

लाला जी उसे यूं छोड़ने वाले नहीं थे झट बोले, "हुलासी तू खेत से कितना जोड़ लेगा? कल तेरे बच्चे बड़े होंगे, उनका खर्च बढ़ेगा। शादी-ब्याह करने होंगे। तब किसके आगे हाथ फैलाएगा। मेरी मान, मेरा साथी बन जा।"

हुलासी हँसा––"लाला जी कहां राजा भोज कहां गंगुआ तेली! मेरे पास न धन है न व्यापार का हुनर। मैं आपका साथी कैसे बन सकता हूं?"

लाला बोला––"व्यापार में धन तो मैं ही लगाऊंगा। मुझे तो बस तुम्हारे जैसे ईमानदार और मेहनती साथी की जरूरत है। फिर बाहर दिन ही कितने लगने हैं। सामान बिका और हम लौटे।"

हुलासी, चालाक लाला की मीठी बातों में आ गया। दोनों में तय हुआ कि सामान हुलासी ढोएगा। लेन-देन लाला जी करेंगे। जो लाभ होगा उसका एक तिहाई हुलासी और दो तिहाई लाला जी रखेंगे।

हुलासी ने सब बात अपनी पत्नी सत्तो को बताई। वह बोली, "सोच लो शादी-ब्याह और मित्रता बराबरी के लोगों में ही अच्छे रहते हैं।"

हुलासी बोला, "लाला जी मुझे बराबरी का नहीं समझेंगे तो अगली बार नहीं जाऊंगा। अभी कुछ ही महीनों की ही तो बात है। फसल बोने तक लौट आऊंगा।"

सत्तो ने रोकने की बहुत कोशिश की। पर सब बेकार। हुलासी पर तो एक तिहाई लाभ का लालच सवार हो गया था।

लाला प्रसादी लाल ढेर सारा सामान हुलासी पर लदवा कर चल दिए। सामान बेचते-खरीदते देश-विदेश घूमते रहे। यूं महीनों बीत गए। बरसात आई।



"देख सत्तो गोबर में क्या चमक रहा है ।"

लाला जी ने गांव छोड़ने की तैयारी शुरू की। उन्होंने अपने सारे पशु बेच दिए। बस बूढ़ी गाय का खरीददार कोई नहीं मिला। उस बूढ़ी गाय को खुला छोड़ वे सभी गांव से चले गए। कहां गए । किसी को नहीं बताया।

उस सुबह सत्तो जब लकड़ी बीन कर जंगल से लौटी तो वह बूढ़ी गाय सत्तो के पीछे-पीछे चली आई।

घर के पास आकर सत्तो पड़ौसिनों से बात करने लगी। गाय उसके दरवाजे पर खड़ी हो गई। वहां गोबर किया और फिर चली गई। सत्तो गोबर उठाने लगी तभी एक पड़ोसिन चीखी :

"सत्तो देख गोबर में वह क्या चमक रहा है।" सत्तो ने देखा, सूरज की किरन पड़ने से एक नग झल-झल चमक रहा है। उसने हाथ से गोबर इधर-उधर किया। अनेक नग चमक पड़े। शोर सुन हुलासी बाहर आया। वह खुशी से उछल पड़ा और बोला, "अरे यह तो रतन है--वही रतन जो हम लाए थे।" सारा गोबर छाना गया। ठीक एक सौ एक हीरे निकले।

हुलासी जैसे होश में आ गया। बोला, "गांव वालो! देख लो, मैं चोर नहीं हूं।"

वहां अनेक लोग एकत्रित हो गए। सभी की जुबान पर एक ही प्रश्न था। आखिर ये हीरे लाला की गाय के गोबर में कैसे निकले।

पर हुलासी तो हथेली पर रतनों की झलक देख रहा था। वह कह उठा, "भगवान का न्याय कितना उजला है।"

परख

बात काफी पुरानी है, एक धनी सामन्त था। उसके पास काफी जागीरें थीं। सभी जगह उसका सम्मान था। घर में भी किसी चीज की कमी नहीं थी। सुन्दर पत्नी, धन-धान्य। सभी कुछ भरा-पूरा था। पर फिर भी वह खुश नहीं था, विवाह के कई वर्ष बीत जाने पर भी उसके कोई सन्तान नहीं थी। पति-पत्नी अक्सर सोचते, 'हमारे बाद हमारी सम्पत्ति को कौन संभालेगा। हमारा वंश कौन चलाएगा।' दोनों ने मन लगाकर पूजा-पाठ किया और कई मन्नतें मांगीं। भगवान ने उनकी सुन ली, बड़े दिनों बाद पत्नी ने चांद-से सुन्दर एक बेटे को जन्म दिया। सामन्त को तो जैसे दुनिया का खजाना मिल गया। बच्चे के रोते ही उसके घर में बहार आ गई। उसने तुरन्त एक ज्योतिषी को बच्चे की जन्म-कुण्डली बनाने के लिए बुलवा भेजा।

ज्योतिषी ने आकर नक्षत्रों का हिसाब लगाया और बोला—"बेटा बड़ा भाग्यवान है। इसके तो राजयोग है। बीसों उंगलियों में चक्र के निशान होंगे, तो चक्रवर्ती राजा बनेगा। पर एक अजीब कुलक्षण दीख रहा है। पिता जितनी बार भी पुत्र को छुएगा, पुत्र की आयु कम होती जाएगी।"

सामन्त घबड़ा गया, बोला—"पंडित जी, ये कैसे सम्भव है कि मैं अपने पुत्र को न छुऊं। कोई पूजा-पाठ या जतन बताइए।"

ज्योतिषी बहुत देर नक्षत्रों का हिसाब लगाता रहा। फिर उसने कहा—"इसमें पूजा-पाठ कोई असर नहीं करेगा।" फिर कुछ सोचता हुआ बोला—"बस एक उपाय सूझ रहा है लेकिन काम मुश्किल है।"

सामन्त धैर्य खो चुका था। बोला—"पंडित जी जल्दी बताओ मैं सब कुछ करने को तैयार हूं।"

पंडित बोला—"इससे पहले कि कोई पुरुष बालक को छुए, उसे किसी सच्चे साधु का स्पर्श कराएं। दोष मिट जाएगा। पर यदि पहले किसी साधारण पुरुष ने बालक को छू लिया तो यह दोष कभी नहीं मिट सकेगा।"

सामन्त ने पूछा—"सच्चा साधु मिलेगा कहां?"

पंडित ने उत्तर दिया—"समस्या विकट है। पर मेरे बाबा बताते थे कि बदरीनाथ-केदारनाथ के मार्ग की किसी एक कंदरा में एक सच्चे महात्मा रहते हैं। आवश्यक बात ही बोलते हैं। शीत से पर्वत कांपने लगते हैं, पर वह एक वस्त्र पहने तपस्या में लीन रहते हैं। हजारों वर्ष की आयु हो चुकी है। पर वह बूढ़े नहीं हुए। कायाकल्प

कर लेते हैं। सर पर जटा जूट है। माथे पर टीका और अंगों पर भभूति। लोग उन्हें पाप निवारण बाबा कहते हैं। यदि उनका स्पर्श बालक को मिल सके, तो दोष मिट जाएगा।''

सामन्त ने कुशल दूतों को तुरन्त मुनि को ढूंढ़ने भेजा और समझाया—''मुनि से निवेदन करना कि बालक बहुत छोटा है। वह इतनी कठिन यात्रा और हिमालय का शीत सहन नहीं कर पाएगा। बस प्रार्थना कर किसी तरह उन्हें लिवा लाना।''

सामन्त रोज अपने बेटे को देखने जाता। पत्नी से पूछता, ''इसकी उंगलियों में चक्र के निशान हैं या शंख के?''

पत्नी उत्तर देती—''मुझे तो चक्र लगते हैं, वैसे ज्योतिषी जी ही देख कर बताएंगे।''

सामन्त चाहता था, वह बेटे को उठा कर चूम ले। उसकी बन्द मुट्ठियां खोल कर खुद निशान देख ले। पर लाचार था।

ज्यों-ज्यों दिन बीतते गए सामन्त को डर लगने लगा। सम्भव है, मुनि मिलें ही न ; या आने से इन्कार कर दिया तो ! तब क्या होगा ? पास रह कर क्या पुत्र को छुए बगैर रह सकेगा ? नहीं, वह कहीं दूर चला जाएगा। यह सोचते ही पुत्र प्राप्ति की सारी खुशी दुख में बदल जाती।

सामन्त के दिन बड़ी उधेड़-बुन में बीत रहे थे। अचानक एक दिन दो मुनियों ने एक साथ हवेली में प्रवेश किया। एक पूर्वी द्वार से घुसा और दूसरा पश्चिमी द्वार से। दोनों की शक्ल-सूरत वेष-भूषा बिल्कुल एक।

परिचय पूछने पर दोनों ने बताया—''लोग उन्हें पाप निवारण बाबा कहते हैं।''

सामन्त चकरा गया। दो साधु पाप निवारण कैसे हो सकते हैं। उसने पूछा—''मुनिवर ! आपके साथ मेरे दूत होंगे, वे कहां हैं?''

दोनों ने उत्तर दिया—''दूत अभी बहुत पीछे चल रहे होंगे। उनकी प्रार्थना पर हम अपनी योगविद्या से यहां जल्दी आ गए।''

मुनियों को सादर भवन में बिठाकर सामन्त भागा-भागा पत्नी के पास आया। सारी बात सुनकर पत्नी ने पंडित जी को बुलवाने की सलाह दी। पंडित जी आए। उन्होंने भी मुनि के बारे में सिर्फ सुना था, देखा नहीं था। ऊपर से दोनों बिल्कुल एक से। पहचान हो भी तो कैसे। कि कौन सच्चा है कौन झूठा।

पंडित जी कुछ देर सोचते रहे, फिर बोले—''मुनियों के पास चलिए। गुत्थी तो सुलझानी ही होगी। मैं आपके पीछे बैठूंगा। उन्हें देखकर चुपचाप कुछ प्रश्न आपको लिख कर दूंगा। आप ऐसे पूछें मानो प्रश्न आपके हैं। मैं पूछूंगा तो उन्हें अपमान लगेगा।''

दोनों वहां गए। सामन्त ने कहा—''बच्चे को मां नहला-धुला कर तैयार कर रही है, तब तक हमें कुछ श्रवण सुख दें।''

दोनों मुनि बोले—''पूछो क्या पूछना है?''

पंडित जी ने चुपचाप एक प्रश्न सामन्त को सरका दिया। सामन्त ने पूछा, "मुनिवर ! कब से आप धरती मां की गोद का गौरव बढ़ा रहे हैं ?"

दोनों ने उत्तर दिया--"हमारा न कोई आदि जान सका है न अन्त।"

पंडित जी ने सोचा था जो उम्र में बड़ा होगा वही सच्चा मुनि होगा। अब उसने दूसरा प्रश्न सरकाया। सामन्त ने कहा--"मुनिवर अपने भक्तों की संख्या बता दें तो मैं सबकी दक्षिणा का कुछ प्रबन्ध करूं।"

मुनि लोग बोले--"हमारा न कोई शत्रु है न भक्त।"

पंडित जी का यह वार भी खाली गया। उन्होंने सोचा था, 'जिसके अनुयायी अधिक होंगे वही पहुंचा हुआ योगी होगा।' कुछ सोच कर उन्होंने तीसरा प्रश्न लिखा।

अब सामन्त ने अन्दर से चारों वेद मंगवाए और बोला--"प्रभु ! आप लोगों के दर्शनों से हमारे नेत्र पवित्र हो गए। कुछ विश्राम के बाद वेदों के अमृत वचनों को सुना कर हमारा जीवन धन्य करिएगा।"

दोनों ने एक साथ कहा--"वेद, पुराण, उपनिषद हमें सब कंठस्थ हैं। इन ग्रंथों को अपने पास रखिए, सामन्त।"

पंडित अब चकरा गया। उसने सोचा था, 'जिसने अधिक गहराई से अध्ययन किया होगा वह सच्चा ऋषि होगा।' पर ये दोनों मुनि तो एक ही बात कहने पर जैसे उतारू थे। कोई भी प्रश्न पूछा जाता तो दोनों एक साथ उत्तर देते। क्या करें, क्या न करें। तभी उन्हें एक तरकीब सूझी। उसने एक और पर्चा सामन्त को पकड़ा दिया।

अब सामन्त ने हाथ जोड़ कर कहा--"आप त्यागी मुनि हैं। हम संसारी जीवों का नित अच्छे-बुरे लोगों से सम्पर्क होता है। बड़ा होने पर बालक इन तरह-तरह के लोगों से कैसे व्यवहार करें, इसका कोई गुरूमंत्र लिख कर दे दें। मैं तावीज बनाकर उसके गले में डालूंगा। जिससे वह सदा कल्याणकारी मार्ग चुने।" दोनों मुनि कुछ मुस्कराए उन्होंने छोटी-छोटी पर्चियां लिख दीं।

दोनों हाथों में अलग-अलग पर्चे पकड़ कर सामन्त बोला—"बालक नहा चुका होगा। ये मंत्र उसके गले में पहना कर उसे अभी लाता हूं।" सामन्त और पंडित जी अन्दर गए। पर्चे पढ़े।

पश्चिम द्वार से घुसे मुनि ने लिखा था—"अच्छे के साथ अच्छा और बुरे के साथ बुरा यानी जैसे के साथ तैसा व्यवहार।"

पूर्व द्वार से घुसे मुनि ने लिखा था--"आग आग से नहीं पानी से बुझती है।"

पंडित जी बोल उठे—"सामन्त ! पूर्व द्वार से आए साधु ही सच्चे साधु हैं।" इधर मां बच्चे को तैयार कर चुकी थी। उसका रूप राजकुमारों-सा खिल रहा था। जब सब लोग बच्चे को लेकर बाहर आए तो वहां सिर्फ एक ही मुनि बैठे थे जो



"शतायु भव।"

पूर्वी द्वार से घुसे थे। सामन्त और उनकी पत्नी को आश्चर्य में डूबा देख कर पंडित जी बोल उठे— "शुभ काम में विलम्ब न करें।"

इशारा समझ मां ने बच्चे को मुनि के चरणों में लिटा दिया।

बालक को हाथों में उठा कर मुनि ने "शतायुभव" कहा और फिर उसे पिता की गोद में दे दिया।

सामन्त को लगा जैसे उसकी गोद में स्वर्ग उतर आया हो। वह खुशी से झूम उठा। तभी पंडित जी ने पूछा—

"मुनिवर दूसरे मुनि कहां हैं?"

मुनि हंस कर बोले—"दूसरा कौन? सिर्फ मैं ही तो था। वह मेरी छाया थी। जैसे बालक का दोष जानकर तुम सच्चे साधु की गोद में ही उसको देना चाहते थे, उसी प्रकार यह सुनकर कि बालक के राजयोग हैं, मैं भी उसे शतायु होने का आशीष देने से पहले एक परख करना चाहता था। जानना चाहता था, तुम उसे कैसी शिक्षा दोगे।"

इससे पहले कि कोई कुछ और कहता मुनि अंतर्धान हो चुके थे। और वहां सब खुशी-खुशी बच्चे की उंगलियों के निशान देखने में लग चुके थे।

और बाढ़ उतर गई

दीनू और पातू दो भाई थे। दोनों की आयु में काफी अन्तर था। दीनू पहली मां का था। वह मर चुकी थी। पातू दूसरी मां का। उनके पिता का देहान्त हुआ तो पातू छः सात वर्षों का ही होगा। खेत-खलिहान का काम दीनू के कन्धों पर आया। वह सब पैसे और अनाज लाकर मां को दे देता। मां पहले की ही तरह घर चलाती।

कुछ दिन बाद दीनू के लिए रिश्ते आने लगे। मां ने सोचा—'बहू घर में आ जाएगी तो दीनू कमाई उसे देगा।' मां ने कहा—"कुछ रुपये जोड़ लें, तब दीनू का विवाह करेंगे।"

दीनू अपने भाई को खूब पढ़ाना चाहता था। उसने पातू को शहर भेजने की बात चलाई। मां को लगा—'पातू चला जाएगा तो दीनू सारे खेतों पर कब्जा ही कर लेगा।' उसने पातू को आंखों से दूर करने से साफ मना कर दिया।

गांव में आगे स्कूल था नहीं। अब पातू खेतों पर गया। पर उसका काम में मन नहीं लगता। वह चुपचाप ताश खेलता। बीड़ी फूंकता। दीनू ने मां से पातू की शिकायत की।

मां बोली—"बेटा मैं तो खुद समझ रही हूं। पातू की आदतें बिगड़ रही हैं। सोचती हूं, इसका ब्याह कर दूं। गृहस्थी का जुआ कन्धों पर आएगा तो काम में झुकेगा।"

दीनू हक्का-वक्का रह गया। छोटे का विवाह बड़े से पहले? ये मां ने कैसे सोचा! पर कह इतना ही पाया—"जो तुम ठीक समझो वही करो मां।"

पातू की शादी बड़ी धूम-धाम से हो गई। मां ने अपना सारा जेवर बहू को चढ़ा दिया।

पातू ने अब घर से निकलना भी छोड़ दिया। काम करने की उसे जरूरत भी क्या थी। घर का खर्च चलाने को दीनू जो था।

एक दिन दीनू ने कहा, "पातू! कुछ मेरे काम-काज में भी हाथ बटा। अकेले कहां तक करता रहूंगा।"

मां बीच में बोल पड़ी, "बेटा अभी तो घर के मेहमान भी नहीं गए हैं, कुछ दिन रुक जा। पातू काम पर जरूर जाएगा।"

धीरे-धीरे पातू चार लड़कों का पिता बन गया। पर काम पर जाने वाला दिन कभी नहीं आया।

दीनू रोटी बांध कर सुबह खेत पर जाता तो रात ही को लौटता। वह उदास रहने

लगा। आने वाले हर नए प्राणी के साथ घर का खर्च बढ़ता पर काम करने को दीनू के पास दो ही हाथ थे।

गांव के कुछ बड़े-बूढ़ों से नहीं रहा गया। उन्होंने दीनू की मां पर उसकी शादी का जोर डाला।

मां ने दीनू की शादी एक अनाथ लड़की से कर दी। विवाह बहुत सादा हुआ। धूम-धाम को पैसे कहां थे? बहू को देने के लिए मां के पास जेवर तो नहीं बचा था, हां ताने अक्सर सुना देती।

दीनू की पत्नी रम्मो बड़ी सीधी और सुशील थी। वह कुछ नहीं कहती। सबसे पहले उठती। सब काम करती और सबसे बाद में सोती। रम्मो दोपहर को खेतों पर ताजा रोटी भी ले जाती। दीनू रोटी खाता जाता और रम्मो जैसी पत्नी पाने के लिए अपने भाग्य को सराहता जाता।

कुछ समय बाद रम्मो ने भी एक बेटे को जन्म दिया। बेटे का नाम गंगप्रसाद रखा गया। सब प्यार से उसे गंगू कहते।

गंगू कुछ बड़ा हुआ तो दीनू उसे खेतों पर ले जाता। कभी गांव के छोर पर बहती गंगा मैया की सैर कराता। दीनू कहता, "गंगू! मैं तुझे खूब पढ़ाऊंगा। पातू तो नहीं गया मगर तुझे बड़े स्कूल भेजूंगा।"

पर जब तक पढ़ाई के लिए बाहर जाने का गंगू का समय आया दीन चल बसा।

खेत-खलिहान अब पातू को संभालने पड़े। उससे भला क्या काम होता?

गंगू की पढ़ाई छुड़वा दी गई। पातू उससे खेत पर मजदूरों की तरह काम लेता।

पैसा अब पातू रखता। घर की चाबी उसकी पत्नी। वह अपने बच्चों को छुप-छुप कर दूध पिलाते, मक्खन रोटी देते। गंगू और रम्मो को मोटी रोटी ही मिलती। अपने ही घर में दोनों नौकरों से भी बदतर हालत में रहने लगे।

रम्मो अपने साथ सब कुछ सह सकती थी। पर गंगू की यह दुर्दशा उससे न देखी जाती। पातू के बड़े-बड़े लड़के ज़रा-ज़रा सी बात पर गंगू के चनकट उड़ा देते। गंगू छोटा और कमजोर था।

हार कर एक दिन रम्मो ने खेत अलग करने की बात चलाई।

पातू आंखें तरेरता हुआ बोला—"कान खोल कर सुन लो, भौजी। अपनी सारी जिन्दगी खेत भैया ने रखे, अब अपनी जिन्दगी में मैं रखूंगा।"

रम्मो बोली, "लाला! तुम्हारे भैया की बात और थी। जब सभी खा लेते तभी उनका परिवार खाता था।"

पातू व्यंग्य से हँसता बोला, "वही ढर्रा तो अब भी चल रहा है। शिकायत किस बात की? बाद में ही खाती तो हो।"

तू... तू... मैं... मैं बढ़ी। पातू के लड़के घिर आए। उन्होंने आव देखा न ताव, गंगू और उसकी मां को घर के बाहर ढकेल दिया।

अब रम्मो कहां जाती। उसने गांव के पंचों के दरवाजे खटखटाए। सभी ने कहा, "अभी हम क्या कर सकते हैं। जब पंचायत जुड़ेगी तभी तुम्हारा फैसला होगा। जब किसी ने सहारा न दिया तब वह मंदिर में शरण लेने गई।"

मंदिर का बूढ़ा पुजारी बहुत बुद्धिमान था। उसने रम्मो को शरण दी और समझाया--"बिटिया! पंचों को न्याय देना होता तो पंचायत आज ही जोड़ सकते थे। असल बात है, कोई पातू से बैर नहीं लेना चाहता। उसके लड़कों से डरते हैं।"

गंगू बीच में पूछ बैठा--"इसका मतलब है, इस गांव में हमें कोई न्याय नहीं दिला सकता?"

पुजारी क्षण भर को चुप हो गया फिर बोला, "नहीं बेटा हिम्मत न हारो। इसी गांव में तो गंगा मैया भी बहती हैं। बेटा तेरा न्याय गंगा मैया करेंगी।"

पुजारी की बात सच निकली। पंच पंचायत जोड़ने में टाल-मटोल करते रहे। रम्मो को इस गांव में रहना एक-एक दिन भारी पड़ रहा था। हारकर वह गंगू के साथ गंगा के पार वाले गांव में चली गई।

वहां रम्मो दूसरों का काम करके किसी तरह अपना खर्च चलाने लगी। वहाँ उसने गंगू का नाम भी स्कूल में लिखवा दिया।

मां का हाथ बंटाने को गंगू ने नाव चलानी सीखी। समय मिलने पर वह मुसाफिरों को इस पार से उस पार पहुंचाता। कभी-कभी अपने खेतों की तरफ से भी निकलता तो आंखें भर आतीं। वह कह उठता--"गंगा मैया मेरा न्याय कब करोगी?"



"तूने हमें बचा लिया बेटे।"

कुछ साल बीत गए। एक बार जोरों की वर्षा हुई। गंगा में पानी बढ़ने लगा। किनारों के लोग गांव छोड़-छोड़ कर भागने लगे। जिन्हें धन-सम्पत्ति से अधिक लगाव था, घरों में रह गए। देखते ही देखते पातू का गांव पानी मे घिर गया। छप्पर-टापरी तक बहने लगे। मल्लाहों ने बहुतों को निकाला। पर जब

हवा और पानी का बहाव एक दम तेज हो गया तो मल्लाह भी लौट पड़े। अपनी जान से भला कौन खेलता।

गंगू अकेला डटा रहा। वह अपने गांव वालों को बहुत प्यार करता था। जब वह दो बूढ़ों को बचा कर लौट रहा था, उसे पातू की चीख सुनाई दी, "बचा ले गंगू हमें बचा ले।" उसने देखा दूर एक छप्पर पर उसके चाचा-चाची चिपके पड़े हैं। छप्पर टूट कर बहने ही वाला है।

गंगू ने चीख सुनी अनसुनी कर दी। वह नाव बढ़ा चला। नाव में बैठे बूढ़ों ने कहा, "बेटा पातू को बचा ले।"

गंगू गरजा, "बारिश हो रही है नाव में बोझ बढ़ा तो डूब जाएगी।" अपनी जान का खतरा देख बूढ़े चुप हो गए।

पातू फिर चीखा—"गंगू हमें माफ कर दे, हमें बचा ले बेटा।"

गंगू ने नाव नहीं मोड़ी। उसने देखा दूर से एक बड़ी ऊंची लहर चली आ रही है। लहर का शोर गंगू के कानों से टकराया तो उसे लगा जैसे पुजारी कह रहा हैं—"बेटा तेरा न्याय गंगा मैया खुद करेगी।"

गंगू बिजली के वेग से पलटा, उसने चाचा-चाची को नाव में खींचा। लहर आई। नाव उछली और छप्पर नीचे से बह गया।

गंगू चाचा-चाची को ले कर अपने गांव आया। वहां दोनों गांवों के लोग इकट्ठे हुए। सब पंच भी थे। सभी गंगू की तारीफ कर रहे थे और पातू को उसके व्यवहार के लिए धिक्कार रहे थे।

अपनी लाज रखने को पातू को कहना ही पड़ा—"गंगू, गांव लौट आ। अपनी खेती-बाड़ी संभाल।"

रम्मो बोल उठी—"मैं तो पंचायत न जोड़ सकी। पर गंगा मैया ने यहां सब पंचों को जोड़ दिया। लाला! इन्हीं के सामने बता दो, खेतों का कौन सा हिस्सा गंगू को दोगे?"

पातू बोला, "हमारे खेतों के बीच में चौधरी के आम का बाग है। बाग के पूरब वाला गंगू का और पश्चिम वाला मेरा।

पंचों के सामने यों खेतों का हिस्सा बांट हो गया। "ठीक है" कह कर पंचों ने उस पर अपनी स्वीकृति की मुहर लगा दी। पंच अपने न्याय पर गुमान करने लगे।

कुछ दिन बाद बरसात रुकी। मौसम साफ हुआ और बाढ़ उतर गई। गांव वाले घरों को लौटे। सभी चकित। ऐसा तो कभी देखा नहीं था। गंगा मैया ने रास्ता बदल दिया था। पातू का पश्चिम वाला खेत मां की गोद में समा गया था। गंगू का पूरब वाला खेत साफ बच गया था। आम के पेड़ हवा में झूम-झूम कर जैसे पातू का मुंह चिढ़ा रहे थे।

पंच एक दूसरे का मुंह ताक रहे थे। सोच रहे थे। गंगू को जो न्याय हम न दे सके गंगा मैया ने दे दिया। पातू को सजा मिल गई।

दूर की सूझ

एक था राजा। बड़ा सुखी। राज्य में शान्ति, सुन्दर रानी और हिरण के छौने-सा एक चंचल राजकुमार उसके पास थे। उसे भला और क्या चाहिए था ?

पर समय सदा एक-सा नहीं रहता। सुख-दुख तो जीवन में धूप-छांव की तरह आते-जाते हैं। रानी बीमार पड़ी। राजा ने हर संभव इलाज कर लिया। पर रानी की हालत गिरती ही गई।

एक दिन रानी ने राजा से कहा, "लगता है मेरा समय आ गया है। आप एक वचन दें। यदि दूसरा विवाह करें तो मेरी ही बहन रत्ना से। वह हमारे बेटे अजित को प्यार से रखेगी।"

राजा ने रानी के सिर पर हाथ रखा। वचन दिया। रानी के प्राण पखेरू उड़ गए।

महल में मातम छा गया। कुमार अजित को बिलखता देख कर राजा और उदास हो जाता। समय बीता, राजा के लिए सुन्दर-सुन्दर राजकुमारियों के रिश्ते आने लगे। पर राजा को रानी की अंतिम इच्छा याद थी। उसने विवाह रत्ना से ही किया।

रानी रत्ना सुन्दर तो अधिक नहीं थीं पर चतुर थीं। उसने जल्दी ही राजा का मन जीत लिया। वह अजित को भी बहुत प्यार करती। अजित नई मां से जल्दी ही हिल-मिल गया। यह देख राजा और भी निश्चिंत हो गया।

कुछ दिन बाद रानी रत्ना भी मां बनी। अजित छोटे भाई को देख कर फूला न समाया। वह भागा-भागा राजा के पास गया। उसने पूछा, "पिता जी, मेरे भाई का नाम क्या है ?"

राजा ने उसे गोदी में उठा कर चूमते हुए कहा, "तुम अजित तो वह सर्वजित।"

महल बधाइयों से गूंज उठा।

पर ज्यों-ज्यों सर्वजित बड़ा हुआ रानी को एक चिन्ता सताने लगी। उसने सोचा—'अजित के कारण मेरा सर्वजित गद्दी पर नहीं बैठ पाएगा।' रानी इसी सोच में डूबी रहती। एक दिन उसे एक तरकीब सूझी। उसने पूरी योजना बना ली।

अब वह अजित को और भी अधिक लाड़-दुलार करने लगी। अपने हाथों से उसको खाना खिलाती। दूध पिलाती। पर असर उल्टा हुआ। धीरे-धीरे अजित हर समय ऊंघने लगा। गुरु जी जो पढ़ाते आधी बात याद रहती, आधी भूल जाती। शाम होते ही सो जाता। सुबह राजा के दरबार चले जाने पर ही उठता।

उधर सर्वजित हँसने-खेलने लगा था। राजा दरबार के लिए तैयार होते तो वह गोदी के लिए दोनों हाथ पसार देता। राजा निहाल हो जाते।

एक दिन राजा ने पूछा, "आजकल अजित बड़ा आलसी होता जा रहा है, बात क्या है?"

रानी ने अवसर देख कर कहा, "बात क्या होगी, अभी बच्चा है। छोटे भाई से कुछ ईर्ष्या करने लगा है। इसीलिए अलग-अलग पड़ा रहता है। इस ईर्ष्या का उसकी पढ़ाई पर भी बुरा असर पड़ रहा है। आप उचित समझें तो कुछ समय के लिए उसे ननिहाल भेज दें। कुछ समझ पड़ने पर लौटेगा तो भाई को अधिक प्यार करेगा।"

राजा को रानी की बात जंच गई। अजित को ननिहाल भेज दिया गया। वहां उसका बड़ा लाड़-दुलार होता। पर शिक्षा का कोई उचित प्रबन्ध न हो सका।

कई वर्षों बाद जब अजित लौटा तो सर्वजित उससे हर बात में आगे निकल चुका था। अस्त्र-शस्त्र के मुकाबले में सर्वजित जीतता। बुद्धि परीक्षण में वह आगे निकलता। उसका मुख-मंडल खिला-खिला था और अजित का मुर्झाया-सा। दोनों में काफी अन्तर आ गया था। लोग तो यहां तक कहने लगे कि 'युवराज' तो सर्वजित ही लगते हैं।

समय अपनी रफ्तार से चल रहा था। राज्य के सबसे बड़े जागीरदार की मृत्यु हो गई। मंत्रियों की सलाह पर राजा ने सर्वजित को वहां का प्रशासन चलाने भेज दिया।

अजित को इस समय अपनी उपेक्षा अखरी। वह घोड़े पर सवार हो अकेला ही दूर निकल गया। महल लौटने का उसका मन ही न किया।

चलते-चलते अजित एक आश्रम में पहुंचा। वहां एक ऋषि समाधि में लीन बैठे थे। आश्रम की शान्ति अजित को अच्छी लगी। वह घोड़े से उतर चुपचाप एक ओर बैठ गया। खाली बैठे-बैठे उसका मन ऊबने लगा। उसने चारों ओर निगाह दौड़ाई। ऋषि के चारों ओर सूखे पत्ते ही पत्ते बिखरे थे। वह उठ कर धीरे-धीरे भूमि की सफाई करने लगा।

पत्तों की खड़खड़ाहट से ऋषि की आंख खुली। राजकीय वस्त्र में एक युवक को अपनी सेवा करते देख उन्होंने उसे सामने बिठाया। आने का कारण पूछा।

अजित ने भरे कंठ से अपनी सारी कहानी सुना दी और पूछा, "अब मैं क्या करूं।"

ऋषि कुछ सोचते रहे फिर बोले, "कुमार गीता पढ़ी है? उसमें कहा गया है, 'कर्म फल की इच्छा छोड़ कर तू कर्म कर।' तुम्हारे लिए अभी यही उचित है कि महल लौट जाओ। कुछ काम करो, समय आने पर कोई उपाय सोचा जाएगा।"

अजित बोला, "मैं एक राजकुमार हूं। छोटा-मोटा काम करने नहीं दिया जाएगा। प्रशासन के योग्य समझा नहीं गया। क्या काम करूं?"



"महल की अद्भुत बीमारियों का रहस्य मैं बता दूंगा।"

ऋषि बोले, "प्रजा का सुख-दुख देखना तो राजघराने का दायित्व होता है। तुम राजा की आज्ञा लेकर भेष बदल कर यही काम करो। न करने की अपेक्षा कुछ करना अच्छा है।"

अजित ने ऋषि की बात मानी। उसने राजा से आज्ञा ले ली। एक विश्वास-पात्र आदमी साथ लेकर वह भेष बदल कर राज्य में घूमता।

धीरे-धीरे चोरों लुटेरों के अड्डों के भेद खुलने लगे। उन्हें तहस-नहस किया जाने लगा। गुण्डे परेशान कि उन्होंने तो राजा के सभी जासूस खरीद रखे थे। फिर उनका भेद राजा पर कौन खोलता है?

उधर जनता की असली गरीबी की हालत भी पता चली। कई घरों में बच्चे भूखे सो जाते हैं। ठंड से बचने के लिए बहुतों के पास कपड़े नहीं थे। कुछ बूढ़े अपना इलाज न करवा पाते।

नगर का असली चिट्ठा राजा को मिलता। राज्य की अनेक गम्भीर समस्याएं सुलझने लगीं। राजा अजित से मंत्रणा भी करने लगा। यह देख मंत्रिगण उसके सम्पर्क में आने लगे। अजित का मान-सम्मान दरबार में बढ़ गया।

गरीबों को काम दिया गया। मुफ्त दवाखाने खुले। जनता को भी पता चला कि हालत सुधारने वाला देवदूत अजित ही है।

राजा अब बूढ़ा हो चला था। उसे एक अजीब बीमारी ने घेर लिया। उसे नींद नहीं आती थी। बहुत इलाज हुआ पर सब बेकार। राजा की बेचैनी बढ़ती ही गई।

अजित ने आश्रम जाकर ऋषि से राजा की बीमारी का कारण पूछा। ऋषि ने ध्यान लगाया। फिर बोले, "कारण तुम्हें नहीं केवल राजा-रानी को ही बता सकता हूं।"

राजा रानी ने सादर ऋषि को महल में बुलवाया।

ऋषि ने कहा—"बुद्धिमान लोग समय रहते कोई काम अधूरा नहीं छोड़ते। विचारा हुआ काम पूरा कर लो। यह उसी की बेचैनी है।"

राजा ने हाथ जोड़ कर कहा—"मुनिवर मैं दुविधा में फंसा हूं।"

ऋषि बोले—"दुविधा किस बात की राजन! तुम्हारे तो दोनों कुमार योग्य हैं। जिसे जनता चुन ले उसी को उनका युवराज घोषित कर दो।"

अपने मन की दुविधा और उसका हल इस प्रकार ऋषि के मुख से सुन कर राजा समझ गया। उसने तुरन्त दरबार लगाने की आज्ञा दी।

पर रानी को यह बात नहीं जंची। वह धीरे से बोली, "महाराज! दरबार लगाने की इतनी जल्दी भी क्या है। ऋषि-मुनि तो संसार त्यागी होते हैं। राजनीति की बातें क्या समझें। पहले कुछ विचार-विमर्श कर लीजिए।"

ऋषि गंभीर वाणी में बोले—"रानी, आपने ठीक कहा। मुनि संसार त्यागी होते हैं। पर इसीलिए वो त्रिकालदर्शी भी हो जाते हैं। हमने राजा की बीमारी का कारण जाना। हम ये भी जानते हैं कि आज से वर्षों पहले अजित के अधिक सोने का कारण क्या था। उसे दूध में अफीम पिलाई जाती थी।"

राजा ने घूर कर रानी को देखा। रानी का मुंह पीला पड़ चुका था।

राजा दरबार में गए। उन्होंने युवराज का प्रश्न सबके सामने रखा। सभी अजित के नाम पर जय-जय-कार कर उठे। सर्वजित के गुणों को जैसे वह भूल ही चुके थे। तिलक लगा कर उसी समय अजित को युवराज घोषित कर दिया गया।

अपनी मनोकामना पूरी कर के राजा का मन शान्त हो गया। वह इतनी गहरी नींद सोया कि फिर नहीं जागा।

महल में कोहराम मच गया। सर्वजित मां को लेने आया। वह चलने को तैयार हुई तो ऋषि ने कहा—"रानी मां! जाने से पहले आप एक विचार कर लें। कल तक आप केवल दो बेटों की मां थीं। आज आप राजमाता हैं यानी सारी प्रजा की मां। साधारण लोग मां से सुख-दुख कह सकते हैं, राजा से नहीं। उनकी बात राजा तक पहुंचाने का दायित्व अब आप का है।"

इतना कह कर ऋषि वहां से चले गए।

अब रानी मां के पैर ठिठक गए। उन्होंने सोचा मुनि की सूझ कितनी दूर की है। किसी पर अन्याय होता नहीं देख सकते। अजित के प्रति किए अपने व्यवहार से उनका मन ग्लानि से भर उठा। उसे दूर करने को उन्होंने सर्वजित से कहा—"बेटा! बड़े भाई के राजतिलक की तैयारी करो। उससे पहले तुम भी नहीं जा सकोगे।"

जहां चाह वहां राह

गणेशी, एक गरीब मजदूर किशना का बेटा था। दिन भर पत्थर तोड़ कर किशना अपने परिवार का पेट पालता। गणेशी कुछ बड़ा हुआ तो पिता का हाथ बंटाने लगा। पर उसके छोटे-छोटे हाथ जल्दी ही थक जाते। वह एक पेड़ के नीचे बैठ जाता। जब कुछ सुस्ता लेता तो अनजाने में पास पड़ा कोई कंकड़ पत्थर उठा लेता। उसे काटता, छांटता। पत्थर जानवर या आदमी की शक्ल में ढलने लगता। पिता जब भी पुकारता, गणेशी उठ बैठता। उन खिलौनों को पेड़ के खोखले में डाल देता। फिर काम में जुट जाता।

दीवाली का त्यौहार आया। बाजार में दुकानें मिठाई और खिलौनों से सज गईं। गणेशी की छोटी बहन रधिया भी खिलौनों को मचली। पर बिना पैसे खिलौने कैसे आते? तभी गणेशी को पेड़ के खोखले में जमा मूर्तियों की याद आई। वह उन्हे ले आया। पर उन पर न कोई रंग था न चमक थी। रधिया रो पड़ी—"हमें अच्छे खिलौने चाहिए।"

गणेशी का दिल टूट गया। वह उन्हें फेंकने ही जा रहा था कि किशना आ गया। इतनी सारी अनगढ़ मूर्तियों को देख कर उसने पूछा, "कहां से लाया गणेशी?"

गणेशी चुप रहा। किशना सब समझ गया। उसने मूर्तियों को ध्यान से देखा फिर बोला, "तेरे हाथ में हुनर है, गणेशी। बस सीखने की कमी है। मेरा बस चलता तो तुझे चतुरंग मूर्तिकार का शिष्य बना देता। पर अपने भाग में तो पत्थर तोड़ना ही बदा है।"

बात आई-गई हो गई। पर गणेशी के मन में एक बात बैठ गई। उसे मूर्ति बनानी सीखनी है। चतुरंग का शिष्य बनना है।

बातों ही बातों में गणेशी पिता से चतुरंग के बारे में जानकारी लेता रहा। एक दिन उसने कहा—"मैं नगर जा रहा हूं, चतुरंग का शिष्य बनने।"

किशना घबरा कर बोला—"बेटा वह ऊंची गुरुदक्षिणा लेता है। वहां जाना बेकार है।"

पर गणेशी नहीं माना। उसे तो स्वप्न में भी अब तरह-तरह की मूर्तियां दिखने लगी थीं। हार कर किशना को उसे भेजना पड़ा। चलते समय उसने कहा, "बेटा! कुछ सीखने जा रहे हो तो एक बात याद रखना। गुरु को भगवान का रूप मानना"।

गणेशी नगर में घुसा तो चतुरंग के पास खाली हाथ जाने की उसकी हिम्मत



"वे मेरी छेनी से क्या बन उठता है।"

जवाब देने लगी। अब कहाँ जाए। अनजान जगह। अंत में उसने एक टूटे-फूटे खंडहर में शरण ली। वहां एक बूढा भिखारी भी रात काटता था। गणेशी को मजबूरी जान कर भिखारी ने कहा, "घबरा मत बेटा। जहां चाह होती है वहां राह निकल ही आती है। मैं रोज बस्ती में जाता हूं। समय आने पर तेरी मदद करूंगा।"

एक दिन बूढ़े ने कहा, "गणेशी, चतुरंग काम से बाहर गया है। उसके सब शिष्य भी गुरु के जाते ही अपने घर चले गए। घर पर उसकी बूढ़ी मां अकेली पड़ी है। अगर तू उसकी मां की मन से सेवा कर सके, तो काम बन सकता है।"

गणेशी चतुरंग के घर पहुंचा। उसने जी जान से मां की सेवा की। कुछ दिन बाद चतुरंग लौट आया। उसने बिना गुरुदक्षिणा लिए गणेशी को काम सिखाने से साफ मना कर दिया। मां ने बहुत समझाया पर वह राजी न हुआ।

हां उसने गणेशी को मूर्तियों के लिए पत्थर तोड़ कर लाने का काम दे दिया।

मूर्तियों के लिए पत्थर लाते कई महीने बीत गए। पर गणेशी को मूर्ति बनाने में हाथ नहीं लगाने दिया गया। हां, जब चतुरंग शिष्यों को सिखा रहा होता, गणेशी पास खड़ा देखता रहता।

चतुरंग जब भी गणेशी से काम लेता, बड़ी सख्ती से व्यवहार करता पर जब अपने शिष्यों को सिखाता तो ममता की मूर्ति बन जाता। गणेशी को यह बात चुभती। पर तभी उसे पिता का उपदेश याद आ जाता—गुरु को भगवान का रूप मानना।

एक दिन एक बहुत बड़े सेठ आए। उन्होंने एक मन्दिर बनवाया था। उसके लिए चतुरंग से उन्होंने चार-पांच दिन में एक मूर्ति बना कर देने को कहा। गणेशी पत्थर लेने गया। जब लौटने लगा तो अचानक बदली घिर आई। बारिश होने लगी। गणेशी एक गुफा में रुक गया। पर बारिश थी कि थमने का नाम नहीं ले रही थी।

गणेशी सोच में पड़ गया। गुरु जी राह देखते होंगे। मूर्ति बना कर समय पर देनी है। पर इस तूफान में पत्थर लेकर कैसे चले। उसके सामने पत्थर था। उसके पास बसूली, छैनी और हथौड़ी थे। जब तक वर्षा नहीं रुकती समय बरबाद क्यों करूं। यह सोचकर वह मूर्ति बनाने लगा। काम में वह इतना जुट गया कि भूख-प्यास तक भूल गया। चौथे दिन बारिश कब रुक गई, उसे पता ही न चला।

शाम को चतुरंग के शिष्य गणेशी को ढूंढ़ते वहां पहुंचे और नाराज हुए—लो गणेशी तुम यहां छुपे हो। गुरुजी उधर परेशान हैं। सेठ भी एक पुरानी मूर्ति ले गया।

गणेशी का हाथ रुक गया। उसका सारा उत्साह जाता रहा।

वह चतुरंग के पास लौट आया। इसी बीच एक एलान हुआ। राजा अपने देश की सबसे अच्छी मूर्ति राजमंदिर में लगवाना चाहता है। जो लोग चाहें शरद पूर्णिमा तक अपनी-अपनी मूर्तियां दरबार में पहुंचा दें। चतुरंग और उसके शिष्यों की मूर्तियां दरबार में पहुंचाने का काम गणेशी को करना पड़ा। इस बीच गणेशी रोज कुछ घंटे अपनी उस गुफा में भी बिताता।

निर्णय का दिन आया। दरबार लोगों से खचाखच भरा था। वहां अनेक मूर्तियां मखमल और जरी के सुन्दर कपड़ों से ढकी रखी थीं। राजा जिस मूर्ति के पास जाता, चित्रकार अपनी मूर्ति से आवरण हटाता। मूर्ति की विशेषताएं बताता। एक से एक सुन्दर मूर्ति। कोई मकराने के संगमरमर की बनी थी तो कोई अष्टधातु की। किसी के सोने का मुकुट लगा था तो किसी-किसी के माथे पर हीरा। किसी के मोतियों की माला पड़ी थी तो किसी की आंखों में कुन्दन जड़े थे। निर्णय करना मुश्किल था कौन-सी मूर्ति अधिक मूल्यवान है, सुन्दर है।

बस अब एक आखिरी मूर्ति रह गई थी। वह केले के पत्तों से ढकी थी। राजा उसके सामने जा खड़े हुए।

वहां खड़े एक अनुचर ने हाथ जोड़ कर कहा, "महाराज ! मूर्तिकार की एक प्रार्थना है। आप मूर्ति के दर्शन तभी करें जब लोग यह बता दें कि मूर्ति किसकी है।" राजा ने आंखें मूंद लीं। पत्ते हटाए गए । मूर्ति के दाईं ओर खड़े लोग बोले कि मूर्ति शिव जी की है। बाईं ओर वाले बोले, "नहीं पार्वती की है।" क्षण भर में सभी वहां झुक गए। पर मूर्ति के दाईं और बाईं ओर वाले अपना निर्णय बदलने को तैयार न थे। मूर्तिकार की पुकार हुई।

गणेशी ने हाथ जोड़ कर कहा—"महाराज ! नारीश्वर भगवान के दर्शन करें।" राजा ने आंखें खोलीं। कला का अद्भुत नमूना उनकी आंखों के सामने था । जिसका आधा मुख पौरुष और निर्भीकता के प्रतीक शिव का था और आधा कोमलता और ममता की प्रतिमा पार्वती का। राजा प्रसन्न हो उठे ।

गणेशी को पुरस्कार लेने बुलाया गया। उसने कहा, "पुरस्कार मेरे गुरु चतुरंग ग्रहण करेंगे। उन्हीं की प्रेरणा से मैंने ये मूर्ति बनाई है। कभी वह कठोर दिखते थे, कभी कोमल ।"

चतुरंग का दरबार में बड़ा मान-सम्मान हुआ। पर गणेशी फिर वहां नहीं दिखा।

चतुरंग घर आया तो गणेशी एक कोने में बैठा था। उसने पूछा, "गणेशी तुम दरबार से लौट क्यों आए।"

गणेशी बोला, "बिना गुरुदक्षिणा दिए आपको गुरु घोषित कर दिया था । इसी डर से।"

चतुरंग के आंसू निकल पड़े। उसने कहा—"गणेशी तेरे जैसी गुरुदक्षिणा भला कौन दे सकता था। धन बहुतों ने दिया । मान-सम्मान तो तू ही दे सका। मेरी अन्तिम इच्छा पूरी हुई।"

उन्होंने कुछ रुक कर फिर कहा—"गुरुमंत्र देने की अब मेरी बारी है। अब तुझे क्या सिखाऊंगा ? हां, मेरे ये औजार और ये स्थान अब तेरा है । मैं भगवद् भजन करने पहाड़ों पर जाऊंगा।"

बहुत रोकने पर भी चतुरंग नहीं रुका।

उसके बाद गणेशी के अनगिनत शिष्य हुए। उसने अनेक प्रसिद्ध मूर्तियां बनाईं पर गुरु के आदर में मूर्तियों पर अपना नाम नहीं लिखा।

अपना नाम न खोदने की परम्परा को गणेशी के बाद भी युगों तक निभाया जाता रहा।

अन्नपूर्णा

श्यामली नाम की एक सुन्दर और चंचल लड़की थी। उसके मां-बाप बचपन में ही मर गए थे। बाबा ने बड़े प्यार से उसे पाला। उसका नाम श्यामली जरुर था पर रंग गोरा था। आंखें बड़ी-बड़ी, नाक-नक्श तीखे और बाल काले घने और लम्बे थे। जो देखता बस देखता ही रह जाता।

श्यामली ज्यों-ज्यों बड़ी हो रही थी बाबा की उम्र ढल रही थी। तन्दरुस्ती उनका साथ छोड़ रही थी। वे ज्यों-त्यों करके घर का खर्च चला रहे थे कि एक और मुसीबत खड़ी हो गई। बाबा को रतौंधी आने लगी। रात में दीखना ही बन्द हो गया।

लोगों ने राय दी, "आंखें किसी बड़ी जगह दिखाओ।" बाबा ने बात सुनी अनसुनी कर दी। पर श्यामली जिद पकड़ गई। वह बाबा को शहर ले जाकर ही मानी।

आंखें दिखा कर लौटने तक शाम हो गई। अचानक बादल घिरने लगे। जाड़े के दिन थे। शाम को ही अंधेरा छा गया। बाबा को रास्ता सूझ नहीं रहा था। श्यामली सहारा देकर ले जा रही थी। तभी जोरों की बारिश शुरू हो गई।

सिर छुपाने को श्यामली ने आंखें दौड़ाईं। एक ऊंची हवेली दिखी। वहां पहुंची तो सब दरवाजे बंद थे। वह बाबा को लेकर बरामदे में खड़ी हो गई और हवेली की सुन्दरता की प्रशंसा करने लगी।

बाहर आवाजें सुन कर हवेली के मालिक ने खिड़की से झांका और पूछा, "कौन है।"

श्यामली खिड़की के पास आ गई और बोली, "राहगीर हैं। बारिश से बचने को यहां खड़े हो गए हैं।"

खिड़की की रोशनी श्यामली के मुख पर पड़ रही थी। सरसर हवा में उड़ते उसके काले घने बाल। भोला सलोना मुंह।

हवेली का मालिक कुछ कहे, इससे पहले उसके पीछे खड़ी उसकी पत्नी बोल उठी—"ठाकुर राम सिंह की हवेली क्या कोई सराय है। तुम्हारे ठहरने से हमें क्या मिलेगा?"

श्यामली ने हाथ जोड़ दिए—"सुबह होते ही चले जाएंगे। अंधेरे में बाबा को दीखता भी नहीं है।"

परन्तु पत्नी के इशारे पर ठाकुर बोला, "सुनो, तुम लोग अपना रास्ता नापो।"

श्यामली के पीछे खड़ा बाबा सब सुन रहा था वह बोल उठा, "बेटी चल यहां से।

तू हवेली की तारीफ करती थी न। ऊंची दुकान फीका पकवान।"

दोनों चल दिए। रास्ते में भी कोठियां पड़ीं पर बाबा अब रुकने को तैयार नहीं थे।

घर पहुंचते-पहुंचते बाबा को तेज बुखार चढ़ आया। सारे जोड़ सूज गए। इलाज हुआ पर बुखार महीनों नहीं उतरा। जब उतरा तो बाबा चलने-फिरने से बेकार-से हो गए।

घर का जमा धन खर्च हो गया। चीजें बिकने लगीं। श्यामली की पढ़ाई कैसे चलती। छूट गई। बाबा को बहुत बुरा लगा। उन्हें एक और भी चिन्ता सताती। श्यामली के विवाह की। झोंपड़ी बेच कर खर्चा जुटा भी लेते। पर मुश्किल थी लड़का ढूंढने की। भाग-दौड़ कौन करे? जिस-तिस के हाथ जोड़ते।

उधर हवेली का ठाकुर अपने काम के सिलसिले में बाहर गया। उसका काम था रुपयों का लेन-देन करना। वह अपने कर्जदारों से पैसा वसूल कर के घर लौट रहा था। जेठ की दुपहर थी। चिलचिलाती धूप। लू अलग से। सड़क पर दूर-दूर तक कोई राहगीर नहीं था। अचानक लुटेरों ने घेर लिया। साईस भाग गया। लुटेरों ने ठाकुर को लूटा और उसकी गाड़ी ले कर नौ दो ग्यारह हो गए।

ठाकुर लड़खड़ाता हुआ पैदल चल दिया। हाल बेहाल हो रहा था। बस्ती की जो पहली झोंपड़ी मिली वहीं धम्म से बैठ गया।

दरवाजा एक बूढ़े ने खोला। ठाकुर बोला, "जरा-सा पानी मिलेगा, बाबा?"

बाबा बोला, "हां हां बेटा। अंदर आ जाओ। बड़ी लू चल रही है।"

पानी पीकर ठाकुर की आंखें खुलीं। उसने बाबा को सारी दुर्घटना बता दी।

बाबा ने कहा—"बेटा जान बच गई। समझो लाखों पाए। कुछ आराम कर लो तब आगे जाना।"

ठाकुर खाट पर लेट गया। बाबा ने रसोई में जा कर श्यामली से मेहमान के खाने को कुछ मांगा।

श्यामली बोली, "आज तो घर में सत्तू भी नहीं है।"

बाबा कुछ देर खामोश रहा फिर धीरे से बोला, "उधार अब कोई नहीं देता। कोई बर्तन-भांडा दे दो, वे बेच दूं।"

श्यामली बोली, "अब सिर्फ एक पतीला बचा है। वह भी बेच दोगे तो पकाएंगे किसमें?"

बाबा की सूखी आंखों में पानी भर आया। वह बुदबुदाया, "कुछ बना ही दे बेटी।"

श्यामली ने रसोई के सारे डिब्बे खोल लिए। कहीं कुछ नहीं मिला। चावल देखने को कुठिया में हाथ डाला। झुकी तो उसके लम्बे-लम्बे बाल भूमि को छूने लगे। चावल तलहटी में भी नहीं थे। खाली हाथ बाहर आई तो उसने अपने बाल समेट लिए। तभी उसे बनिए की कही बात याद आई।



"मुझे बाबा का मान बचाना है।"

उस दिन बाबा के साथ थाली बेचने गई थी। दुकानदार ने कहा था, "क्या दूं इस टूटे बर्तन का ? बाबा एक बात कहूं। हमारी रास मंडली को लम्बे-लम्बे बालों की जरूरत है। अगर श्यामली बाल काट कर दे सके, तो अच्छे पैसे दे दूंगा।" दुकानदार की बात पर बाबा नाराज हुए थ।

श्यामली बुदबुदाई, "नहीं, नहीं वह अपने बाल नहीं बेचेगी। किसी भी कीमत पर नहीं। बेचे भी तो किसके लिए ?"

तभी बाबा की रुंधी आवाज कानों में पड़ी, "बेटी कुछ भी मिला हो तो दे दे, जिन्दगी के आखिरी दिनों में घर आए को भूखा कैसे छोड़ दूं।'

श्यामली बाबा के आंसू नहीं देख सकती थी। उसने कैंची से बाल काट दिए।

बाबा चीखे, "तूने यह क्या किया श्यामली?"

श्यामली कुछ न बोल सकी।

बाल बिके। खाना बना। ठाकुर ने खाने की प्रशंसा की तो बाबा सुन कर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगे। बहुत पूछने पर उन्होंने सारी बात बता दी।

ठाकुर अब उस त्यागमयी लड़की से मिलना चाहता था। वह रसोई घर में ही चला आया। क्षण भर को लड़की का चेहरा देखता रहा। फिर पहचानता हुआ सा बोला—"बेटी तुम्हें कहीं देखा है पर ठीक से पहचान में नहीं आ रही।"

बाबा बोल उठा, "पहचानोगे कैसे, पहले इसके लम्बे-लम्बे बाल थे।"

तभी ठाकुर की आंखों के आगे उस रात वाली लड़की का चेहरा घूम गया। उसने पूछा, "कभी तुम बरसात की रात में ——'

"आपके बरामदे में टिकी थी। श्यामली ने बात पूरी कर दी। कुछ रुककर वह फिर बोली—"मैंने तो आपको आते ही पहचान लिया था इसीलिए चौके से नहीं निकली।"

बाबा ने पूछा, "क्या यह वही ऊंची हवेली वाला ठाकुर है। तूने यह जानते हुए भी श्यामली .... तू ने यह भी न सोचा चार दिन में तुझे कोई देखने आ सकता है।"

श्यामली ने फिर बात काटी—"हां बाबा। पर हमने किसी पर अहसान नहीं किया। सिर्फ अपना धर्म निभाया है।"

कुछ देर सब चुप रहे। फिर ठाकुर बोला, "बाबा, क्या मेरे बेटे से तुम अपनी श्यामली का विवाह कर सकते हो?"

बाबा की आंखें फैल गईं। वह बोले—"हमारी गरीबी की हालत देखते हुए भी?"

ठाकुर बोला, "मैंने तो बस तुम्हारी रईसी देखी है, बाबा। गरीब तो हम हैं जो सब कुछ होते हुए किसी की सहायता को कभी हाथ न बढ़ा सके। हमारी इस गरीबी को श्यामली जैसी अन्नपूर्णा ही दूर कर सकती है। बाबा, ना मत करना।"

सपने जाग उठे

एक शहर में रामू और श्यामू नाम के दो लड़के रहते थे। रामू के पिता राज्य कर्मचारी थे। वह बगैर अपनी मुट्ठी गर्म किए किसी का काम न करते। श्यामू के पिता सुनार थे। वह सोने में मिलावट किए बगैर नथुनी तक न बनाते। दोनों के पास खब पैसा था पर घर की देख-रेख को समय किसी के पास न था।

रामू और श्यामू दोनों का ही पढ़ने में मन न लगता। दोनों स्कूल से चुपचाप खिसक लेते। कौड़ी खेलते। दोनों में मित्रता हो गई थी। पर वह मित्रता प्यार की नहीं थी। इसलिए थी कि दोनों गलत बातों में एक दूसरे का साथ देते थे। एक किसी के बाग से फल चुराता तो दूसरा चौकीदारी करता। एक बकरी पकड़ता तो दूसरा उसका दूध पी जाता। दोनों की रगों में बेईमानी के पैसे का खून दौड़ रहा था।

घर वालों को जब उनकी हरकतों का पता चला तो दोनों की खूब पिटाई हुई। अब वे कक्षा में बैठने लगे। पर पढ़ाई में पिछड़ चुके थे। आगे की पढ़ाई समझ में न आती। घर पर पिताओं को उन्हें पढ़ाने की फुरसत कहां थी।

एक दिन दोनों ने सोचा इस पढ़ने के झंझट से तो अच्छा है कि कहीं भाग चलें। खूब घूमें फिरेंगे। मौज उड़ाएंगे।

उस रात दोनों ने अपने-अपने घर से जेवर और पैसा चुराया और भाग खड़े हुए।

भागते-भागते जब काफी दूर निकल गए तब जान में जान आई। दोनों ने सामान एक थैले में डाल लिया। दोनों को डर था, कहीं दूसरा माल लेकर अंधेरे में रफूचक्कर न हो जाए। दोनों ही कस कर थैले को पकड़ चलते रहे।

कुछ दूर पर उन्हें एक कुआं मिला। उसकी घिर्री पर रस्सी और डोल लटक रहे थे। रामू ने कहा, "मैं तो थक गया। क्यों न कुएं पर बैठ कर कुछ सुस्ता लें।"

श्यामू बोला, "देख कुएं में पानी हो तो हाथ-मुंह धो कर ताजा ही हो लें।"

रामू ज्यों ही पानी देखने के लिए कुएं पर झुका श्यामू ने धक्का दे दिया। श्यामू थैला लेकर भाग खड़ा हुआ।

कुआं पुराना था। पास खड़े एक बरगद की जड़ें उसमें फैल गई थीं। गिरते-गिरते रामू के हाथ में जड़ें आ गईं। उन पर लटक कर रामू चिल्लाने लगा—"बचाओ

उसका पांव फिसल गया। अभी तक मैं उसके घर नहीं पहुंच सका हूं। इसीलिए हार यहां पड़ा है।"

रामू ने अपनी उत्सुक आंखें कलुआ के चेहरे पर गड़ा दीं और पूछा—"क्या अपने मित्र का घर तुम्हें नहीं मालूम?"

कलुआ बोला, "मित्रता का नाम न लो भइया। वह तो मेरे लिए एक स्वप्न है। मित्र के लिए आदमी अपनी जान तक गवां देता है। लेकिन मैंने उसे बचाने को कुछ नहीं किया।"

रामू बोला—"कुछ नहीं किया या उसे खुद धक्का दिया? ——-—श्यामू मुझे नहीं पहचाना, मैं रामू हूं। मां का चन्द्रहार देखते ही मैं पहचान गया था। हां तुम इतने बदल गए हो कि पहचानने में कुछ समय लगा।"

श्यामू खटिया से उछल पड़ा और बोला, "रामू तुम जिन्दा हो। भगवान का लाख-लाख धन्यवाद। अपना यह हार ले जाओ, तभी मैं शान्ति से मर सकूंगा।"

रामू ने पूछा, "श्यामू मरने की बात छोड़ पहले बता तेरे पास तो बहुत धन था। तेरा यह हाल हुआ कैसे?"

श्यामू बोला, "सब मेरे पापों का फल है। तुम्हें मौत के मुंह में ढकेल कर मैं इस शहर आया। खाली बैठ कर खाने से तो कुबेर का खजाना भी खत्म हो जाता है। सब कुछ खर्च हो गया। बस यही हार बचा। तब मुझे होश आया। इतनी बड़ी दुनिया में मेरा कोई नहीं था। लाला के यहां काम कर लिया। सोना गलाने का काम। उससे उठता पीला धुआं मेरे जिस्म को भी गला रहा है।"

रामू ने फिर पूछा—"श्यामू तूने ये हार बेचा क्यों नहीं?" श्यामू कुछ देर चुप रहा फिर बोला, "सपने देखता था कि इसी हार को लौटाने के बहाने ही कभी अपने लोगों से मिल आऊंगा। पर हिम्मत कभी नहीं पड़ी। रामू अब तू ये हार ले कर घर जा।"

रामू ने श्यामू को बाहों में भरते हुए कहा—"हां श्यामू इसी हार के बहाने तो हम मिले हैं। मैं घर जाऊंगा पर अकेला नहीं, तू भी मेरे साथ चलेगा।"

"खाली हाथ क्या मुंह लेके जाऊंगा"—कहते हुए श्यामू की आंखों में आंसू छलक आए।

रामू बोला—"खाली हाथ क्यों श्यामू, चंद्रहार के लिए पैसे लाया था, बच गए हैं। उन्हीं से हम चीजें खरीदेंगे और दोनों घर वालों को देंगे।"

श्यामू से अब न रुका गया। वह फूट-फूट कर रो पड़ा और बोला—"आज तक मैंने जिन्दगी की सिर्फ कड़वाहट झेली थी, रामू तेरे प्यार से मेरे सुनहरे सपने जाग उठे हैं।"



प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार